निकाह में शर्त लगाना

(निकाह की शर्तें, महर और तलाक़ के अधिकार सौंपने
की समस्याएं शरीअत की रोशनी में)

संकलन

क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी रह०

अनुवाद व संक्षेप

अब्दुल्लाह दानिश/डा. ख़लील अहमद

प्रकाशक

ईफ़ा पब्लिकेशन्ज़ नई दिल्ली

© सर्वाधिकार प्रकाशक के पक्ष में सुरक्षित

पुस्तक का नाम	:	निकाह में शर्त लगाना
संकलन	:	क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी रह0
हिन्दीकरण	:	अब्दुल्लाह दानिश/डा. ख़लील अहमद
पृष्ठों की संख्या	:	177
प्रकाशन वर्ष	:	जनवरी 2011
मूल्य	:	85

प्रकाशक

ईफ़ा पब्लिकेशन्ज़

161-एफ़, बेस्मेन्ट जोगा बाई, पोस्ट बाकस न0: 9708,
जामिया नगर, नई दिल्ली-25
फ़ोन न0: 011-26981327
E-mail: ifapublications@gmail.com

मज़्लिसे इदारत

1- मौलाना मुफ़्ती ज़फ़ीरुद्दीन मिफ़्ताही

2- मौलाना मुहम्मद बुरहानुद्दीन संभली

3- मौलाना बदरुल हसन क़ासमी

4- मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

5- मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवी

6- मुफ़्ती मुहम्मद उबैदुल्लाह असअदी

بسم الله الرحمن الرحيم

विषय सूची

प्रारंभ/प्रस्तावना	क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी	9
प्रश्नावली (निकाह में शर्त लगाना)	क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी	13
शोधपत्रों का सारांश (उत्तरों का निचोड़)	मुहम्मद फ़हीम अख़्तर नदवी	17
समस्या की प्रस्तुति		23
निकाह में शर्त और शर्त लगाई गई महर का मसला	मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी	25
तलाक और दूसरे निकाह के साथ शर्त लगाई गई अतिरिक्त महर की मात्रा	मौ. अब्दुल जलील क़ासमी	35
निकाह से पहले तलाक का अधिकार सौंपना।	मौ. महफ़ुज़ुर्रहमान शाहीन जमाली	41
कुछ महत्वपूर्ण लेख		47
निकाह में शर्त, तलाक़ का अधिकार सौंपना और शर्त लगाई गई महर की समस्या।	मौ. ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी	49

निकाह में शर्त लगाला	मौ. अतीक़ अहमद बस्तवी	73
निकाह में शर्त लगाला	मौ. शम्स पीर ज़ादा	84
निकाह में शर्तें निर्धारित करने का शरीअत का आदेश।	मुफ़्ती नसीम अहमद क़ासमी	101
शर्त के साथ निकाह	मौ. वलीउल्लाह क़ासमी	112
संक्षिप्त लेख		127
निकाह में शर्त लगाना	मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी	129
निकाह में शर्त लगाना	मौ. अब्दुल जलील क़ासमी	131
परिचर्चा का संकलनः ईफ़ा (IFA)	उलेमा कमीटी	134
फ़ैसलेः सेमीनार के प्रतिभागीयों के सर्व सम्मति से निर्धारित किये हुए फैसले।	//	166
एक अमली क़दम	//	166
दम्पति जीवन की कठिनाइयों के समाधान की एक प्रयास।	//	167
निकाह नामा	//	173
इक़रार नामा	//	175

☆☆☆

अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है

प्रस्तावना

मानव समाज यूँ तो विभिन्न रिश्तों और नातों से मिलकर बना है परन्तु इन तमाम रिश्तों का स्रोत निकाह है। निकाह के माध्यम से दाम्पत्य सम्बन्ध की स्थापना होती है, फिर पति पत्नी ही माँ-बाप बनते हैं और यहीं से रिश्ता फैलते-फैलते एक सम्पूर्ण खानदान का रूप धारण कर लेता है। इसलिए परिवार व्यवस्था में ठहराव और प्रसन्नचित वातावरण का असली रहस्य दम्पति (दोनों) के बीच अच्छे सम्बन्ध, एक दूसरे के अधिकारों की अच्छी तरह अदायगी और आपसी त्याग और प्यार की भावना है, कुरआन मजीद ने इसी भावना को ''मआशरत बिल मारूफ'' (भला रहन-सहन) की संज्ञा दी है।

यह भी एक वास्तविकता है कि अच्छा व्यवहार और रवैया प्यार की देन है और प्यार, कानून नियम से अधिक भावनाओं की छाया में पल्लवित होता है। इसी लिए निकाह के ख़ुत्बे में बार-बार तक्वा (डरने) पर बल दिया गया है क्योंकि अगर कोई दिल अल्लाह के डर से ख़ाली है और दूसरे पक्ष के प्यार से खाली हो तो कानून की तलवार का उसपर प्रभाव कठिन है, परन्तु इससे भी इनकार संभव नहीं है कि इनसान जो दिलों की धड़कन को सुन नहीं सकता और उसके हाल को पढ़ नहीं सकता, संभव सीमा तक अपने और अपने अधिकार की रक्षा के लिए कुछ नियम कानून का सहारा लेने पर विवश है। यही कारण है कि इबादतों के बाद दाम्पत्य जीवन के नियम कानून का जिस विवरण के साथ वर्णन किया गया है, शायद जीवन के किसी और पहलू पर इतना सूक्ष्म और विस्तृत प्रकाश नहीं डाला गया है। फिर इन्हीं सिद्धान्तों और सूक्ष्म विस्तार से फुकहा ने इस्लाम का एक सम्पूर्ण और संतुलित परिवार व्यवस्था तैयार किया है, जिस को पुराने फुकहा ''मुनाकेहात'' (विवाह बंधन), ''अक्द मुआविज़ा ग़ैर माली'' (धन के बदले बिना निकाह), कहा करते थे आज इसे अहवाले

शख्सीय (व्यक्तिगत मामले) कहा जाता है।

यह परिवार कानून आज भी सबसे पूर्ण, प्रकृति के अनुकूल और संतुलित सामाजिक नियम है, हालाँकि नैतिक पतन, इस्लामी शिक्षाओं से दूरी और ग़ैर मुस्लिम समाज का प्रभाव और इस्लाम की न्याय व्यवस्था से वंचित होने के करण हमारी वर्तमान परिस्थिति हमारे उन फुकहा के जमाने से बहुत कुछ भिन्न हैं, फिर भी उम्मत को उन इज्तेहाद करने वाले फुकहा का आभारी होना चाहिए कि इन बदलते हुए हालात में हमारा इस्लामी फिक्ह (Islamic Jurisprudence) का भण्डार हमारा दिशा निर्देश करता है और शरीअत के कानून का पालन करते हुए हमारी कठिनाइयों का हल निकालता है। इसी पृष्ठभूमि में 20-24 अक्टूबर 1995 को इस्लामी फिक्ह अकेडमी (भारत) नें मुस्लिम यूनीवर्सिटी के परिसर में दीनियात विभाग के सहयोग से ''इश्तेरात फिन् निकाह'' विषय पर सेमीनार का आयोजन किया था।

इस केंद्रीय विषय के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण समस्याओं पर चर्चा का प्रयास किया गया है, निकाह में ऐसी अतिरिक्त शर्त जिससे महिला को लाभ हो, और विभिन्न परिस्थितियों में शर्त लगाकर निर्धारित की गई महर की दो राशियाँ करना कि तलाक़ के दुरूपयोग, और शरीअत की हदों और बन्दिशों का पालन, किसी गम्भीर उद्देश्य और भावना के बिना दूसरे निकाह को रोकने में सहायता मिल सके, तीसरे, तलाक का अधिकार सौंपने की समस्या, ताकि पीड़ित और अन्याय की शिकार औरतें अपने लिए छुटकारा और मुक्ति का उपाय कर सकें और वह उस अधिकार का प्रयोग उचित ढंग से ही कर सकें। अल्लाह की कृपा है कि इन समस्याओं पर सेमीनार के प्रतिभागियों ने अपने निबन्धों और चर्चाओं के माध्यम से गहराई से प्रकाश डाला है, जिसमें सावधानी भी है, कुरआन व सुन्नत के दायरे में रहने का शौक़ भी है। उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया है।, हालात की समझ भी है और सन्तुलन भी। इस सेमीनार का निचोड़ इस संकलन के रूप में पाठकों की सेवा में समर्पित है, इसे निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है।

(1) सवाल-नामा (प्रश्नावली)

(2) प्राप्त उत्तरों का सारांश:

इसमें प्रत्येक प्रश्न से सम्बन्धित उत्तरों का निचोड़ है।

(3) समस्या की प्रस्तुति:

इसमें हर समस्या जिस पर चर्चा हुई है उससे सम्बन्धित तमाम लेखकों के दृष्टिकोण और दलीलों को सामने रखकर प्रस्तुतकर्ता ने किसी राय की वरीयता को है और उसका कराण भी प्रस्तुत किया है।

4- मक़ालात (लेख)

इसमें मूल विषय से सम्बंधित विस्तृत लेख हैं।

5. संक्षिप्त मक़ालात (लेख)

इसमें विषय से सम्बन्धित संक्षिप्त उत्तर है। जो अकेडमी में प्राप्त हुए हैं।

6- प्रस्ताव:

अन्त में इन समस्याओं से सम्बंधित वह प्रस्ताव है जिनको सेमीनार के प्रतिभागियों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है।

इस बात का स्पष्टीकरण उचित लगता है कि इस संकलन की मोटाई को संतुलित रखने के लिए, इस बार लेखों पर पुनर्विचार किया गया है जिन लेखकों के लेखों में एक बात बार-बार आयी है उसे छोड़ दिया गया है जहाँ अधिक विस्तार था उसे संक्षिप्त कर दिया गया है। क्योंकि इससे बात पूरी हो जाती है। कुछ लेखों में अरबी के लम्बे उद्धरण छोड़ दिये गये हैं उनका अनुवाद हवाले के साथ दे दिया गया है। कुछ विशेष अध्ययन (तखस्सुस) के विद्यार्थियों के लेख संक्षिप्त और पूर्ण थे उनको पूरा-पूरा ले लिया गया है और कुछ लेखों का मात्र निचोड़ प्रकाशन में सम्मिलित किया जा रहा है।

आसानी को देखते हुए इस संकलन की किताबत (कम्पोजिंग) कम्प्यूटर से की गई है इससे पहले 'जरूरत व हाजत' संकलन भी इसी प्रकार प्रकाशित किये गये थे, इससे मोटाई (भार) को कम करने में मदद भी मिलती है और काम जल्दी हो जाता है। प्रूफ रीडिंग पर भी विशेष ध्यान दिया गया है, इसके बावजूद ग़लतियाँ संभव हैं। इस सिलसिले में पाठकों से क्षमा चाहूँगा। कम्प्यूटर की कम्पोजिंग में हाशियों (Foot notes) का नीचे देना कठिन होता है। लेख के अन्त में हवाला (Reference) को एकत्र करना पाठकों के लिए कठिनाई का

कारण बनेगा इस लिए पंक्तियों में ही कोष्ठकों में हवाले लिख दिये गये हैं।

ये मजल्ले (संकलन) शुद्ध ज्ञान व फिक्ह के विषय पर हैं और अपने-अपने विषय पर एक सर्वोत्तम ज्ञान की कुन्जी और दस्तावेज़ की तरह हैं। लेकिन स्पष्ट है कि विद्वान, कानून के माहिर और बुद्धिजीवी सज्जनों के लिए ही अधिक रूचि का कारण बन सकते हैं। स्कूल व विश्वविद्यालयों के लिए भी एक महान उपहार हैं। अगर संस्थाएं, पुस्तकालय, और विद्वान व बुद्धिजीवी सज्जन थोड़ा ध्यान दें और इस संकलन को ख़रीदने का प्रयास करें तो यह बड़ी सरलता से बेजी जा सकेंगी और अकेडमी को आर्थिक तंगी से उबरने का अवसर मिलेगा। आशा है हमारे शुभ चिन्तक इस दिशा में विशेष ध्यान देंगे।

☆☆☆

13

प्रश्नावली:

निकाह में शर्त लगाना

निकाह मर्द और औरत के बीच एक बन्धन है जो सम्मानपूर्ण है इससे खानदानी जिन्दगी आरम्भ होती है। निकाह से दो अनजाने व्यक्तियों का मिलाप होता है और दोनों एक दूसरे से प्यार और मुहब्बत के साथ जीवन व्यतीत करने का फैसला करते हैं। इस्लाम इस बन्धन और रिश्ते को मज़बूत और पायदार देखना चाहता है। इसी लिए निकाह में ऐसी शर्त रख दी गयी है कि जिससे यह बन्धन हमेशा के लिए बहुत मजबूत हो जाता है और पति-पत्नी के बीच कर्त्तव्य और अधिकार की पूरी-पूरी रक्षा होती है।

निकाह के बाद पति-पत्नी दोनों पर कुछ जवाब देही लाजमी हो जाती है। चूँकि जो कर्त्तव्य और अधिकार शरीअत ने लागू किया है उसको पति पत्नी पर ही नहीं छोड़ दिया है कि निकाह के समय वह जैसा चाहें वह आपस में तय कर लें बल्कि दोनों की प्रकृति और योग्यता को देखते हुए अल्लाह तआला ने कर्त्तव्य और अधिकार को स्वयं ही मुक़र्रर कर दिया है जो पति पत्नी स्वयं बदल नहीं सकते। इस्लामी शरीअत की तरफ से पति-पत्नी के कुछ मूल अधिकार व कर्त्तवय को इसलिए मुकर्रर कर दिया गया है ताकि कमजोर और मजबूत पक्ष में से कोई किसी का शोषण न कर सके, या मज़बूत पक्ष विवाह के समय अपनी मनमानी शर्त लगा ले और अपने कर्त्तव्य से जी चुराने लगे। इस पृष्ठभूमि में फ़ुकहा (Jurists)ने कुरआन व सुन्नत को देखते हुए विवाह की शर्तों पर चर्चा की है।

विवाह के बन्धन पर जो शर्तें रखी जाती हैं उनको तीन भागों में बाँटा गया है:-

(1) ऐसी शर्त जिनमें पति पत्नी पर कोई जवाब देही नहीं आती और विवाह के बन्धन के बाद जो जिम्मेदारी आती है उसी को विवाह के समय बयान कर

दिया गया हो जैसे पत्नी यह शर्त लगाये कि उसकी जीविका पति प्रदान करेगा।

(2) विवाह के समय कोई पक्ष यह शर्त लगाये जिससे निकाह के बाद की जिम्मेदारी से जी चुराना हो जैसे पति यह कहे कि वह पत्नी के जीविका का जिम्मेदार नहीं होगा।

(3) विवाह के समय कोई ऐसी शर्त लगाना जो उपर्युक्त 1 और 2 में से कोई न हो ऐसी परिस्थिति में किसी पक्ष को ऐसा अधिकार होता है जो बिना शर्त के निकाह में नहीं होता और दूसरे पक्ष पर ऐसी जवाब देही आ जाती है जो बिना शर्त वाले निकाह में नहीं होती ही है, जैसे पत्नी का यह शर्त लगाना कि वह दूसरी बीवी उसकी मौजूदगी में नहीं लायेगा और उसे अपने पैतृक स्थान पर रखेगा और उसे अन्यत्र नहीं ले जायेगा।

उपरोक्त तीनों शर्तों में शरीअत का आदेश दलील के साथ वांछित है:-

(अ) दूसरी शर्त की शरीअत में क्या हैसियत है? और इस शर्त का निकाह पर क्या प्रभाव पड़ेगा? निकाह होगा या न होगा? अगर निकाह हो गया तो सम्बन्धित पक्ष को उस शर्त का पालन करना आवश्यक है?

(ब) तीसरी शर्त का क्या आदेश है? क्या इन शर्तों को पूरा करना आवश्यक है या नहीं, इससे निकाह की वास्तविकता (सेहत) पर प्रभाव पड़ेगा या नहीं पड़ेगा?

(स) निकाह के समय यदि पत्नी यह शर्त लगाये कि उसे तलाक लेने का हक होगा, या ऐसी स्थिति में उसे तलाक लेने का हक़ होगा, और यदि पति इसे स्वीकार कर लेता है तो इसकी शरई हैसियत क्या है? क्या इससे औरत के तलाक का अधिकार मर्द को रहेगा अथवा नहीं रहेगा?

निकाह में शर्त की तीन अवस्थाएं हैं:

(1) निकाह से पूर्व शर्त तय हो जाये और उस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जायें।

(2) निकाह के समय ही उन शर्तों को बयान कर दिया जाये। निकाह के

प्रस्ताव (ईजाब) के साथ शर्त जुड़ी हो या न जुड़ी हो?

(3) निकाह के समय दोनों पक्षों के बीच कोई लिखित समझौता मौजूद हो?

उपरोक्त तीनों स्थितियों में शरीअत के क्या आदेश हैं? और उसकी तरफ से शरई तौर पर क्या पाबन्दियाँ होंगी? इस अधिकार सौंपने के साथ क्या सावधानियाँ बरती जायें और क्या क्या प्रतिबन्ध लगाये जायें जो दोनों पक्षों के लिए लाभदायक हों और किसी भी पक्ष का शोषण न हो सके?

समस्या का एक गंभीर पहलू यह है कि शरीअत ने तलाक़ का अधिकार सिर्फ पति को दे रखा है और तलाक का अधिकार पत्नी को सौंप देने की स्थिति में यह अधिकार पत्नी को मिल जाता है तो क्या इससे शरीअत के उद्देश्यों के नष्ट होने का खतरा तो नहीं है? तो क्या उन उद्देश्यों की रक्षा के लिए अधिकार सौंपने की स्थिति में कुछ ऐसी पाबन्दियाँ लगाई जा सकती हैं जिससे किसी पक्ष का शोषण न हो सके?

तलाक़ शरीअत में घृणित (नापसन्दीदा) है लेकिन कुछ स्थितियों में अनिवार्य भी है। लेकिन तलाक के ग़लत इस्तेमाल से बड़ी खराबियाँ पैदा हो रही हैं और इससे पूरा कुटुम्ब प्रभावित हो रहा है इसलिए इसके ग़लत इस्तेमाल को रोकने के लिए अगर निकाह के समय यह शर्त लगा दी जाये कि यदि पति ने पत्नी को तलाक दी तो औरत का मह्र 20 हज़ार रू. होगा और यदि उसने तलाक दी तो औरत का मह्र दस हजार रू. होगा। क्या ऐसी शर्त वैध और स्वीकार्य है? और दोनों स्थितियों में तय किया हुआ मह्र अनिवार्य होगा? ऐसा मह्र तय करने का अर्थ यह होगा कि पति अधिक देय धन से बचने के लिए तीन तलाक देने के लिए कदम न उठाये जो शरीअत के विरुद्ध हो। इस समस्या को हल करने के लिए फिक्ह (Jurisprudence)से सहायता ली जा सकती है। जिसका तात्पर्य यह है कि यदि निकाह के समय इस तरह का मह्र तय हो जाये कि पति यदि पत्नी को पैतृक स्थान से बाहर नहीं ले गया तो मह्र एक हजार होगा और यदि बाहर ले गया तो मह्र दो हज़ार होगा। इस समस्या में दोनों शर्तें साहबैन की दृष्टि में उचित है। दोनों स्थितियों में तय किया हुआ मह्र अनिवार्य होगा। और इमाम अबू हनीफा (रह0) की दृष्टि में उपरोक्त मह्र उचित

है या नहीं और पहली शर्त में तय किया हुआ मह्र अनिवार्य होता है। और दूसरी स्थिति में उपरोक्त मह्र का ऐतबार नहीं होता बल्कि दूसरी में मह्र मिस्ल अनिवार्य होता है कि वह तय की हुई मह्र से अधिक न हो। मह्र के तय करने में इस तरह के दूसरे मसले भी फिक्ह में पाये जाते हैं जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। क्या फिक्ह में उपरोक्त उद्देश्यों से मह्र की वह शक्ल उचित है और क्या तलाक़ को रोकने के लिए साहबैन के दृष्टिकोण को फतवे के लिए स्वीकार किया जा सकता है।

प्रश्न-2: यदि निकाह के समय ऐसा मह्र तय कर लिया जाये कि यदि पति ने उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह किया तो उसका मह्र तीस हजार होगा और यदि दूसरा निकाह न किया तो उसका मह्र 12 हजार रू. होगा तो ऐसी स्थिति में शरीअत में दोनों शर्तें स्वीकार्य होंगी या नहीं?

प्रश्न-3: इन दिनों औरतों में उच्च शिक्षा का चलन बढ़ता जा रहा है और शिक्षा के बाद बहुत सी औरतें तौकरी में लग जाती हैं या उसके लिए प्रयास करती हैं। यदि ऐसी औरतें निकाह के समय यह शर्त लगायें कि पति उन्हें नौकरी से नहीं रोकेगा और पति इस शर्त को स्वीकार कर लेता है तो उसकी क्या शरई हैसियत होगी? क्या पति को इस शर्त का पालन अनिवार्य होगा अथवा नहीं। अगर पति इस शर्त को स्वीकार करने के बावजूद पत्नी को नौकरी छोड़ने का आदेश देता है या नई नौकरी से रोकता है तो क्या पत्नी को पति के आदेश का पालन करना अनिवार्य होगा अथवा नहीं?

☆☆☆

शोधपत्रों का सारांश

निकाह के समय लगाई गई शर्तों पर लिखे गये शोधपत्रों के दृष्टिकोण, तर्क और उनके रूझान

(1) निकाह बन्धन के कारण जो दायित्व और कर्त्तव्य अनिवार्य हो जाते हैं उन्हीं पर जोर डालने के लिए जो शर्तें रखी जायें वह सर्वसम्मति रूप से क़ाबिले-ऐतेबार हैं। और दोनों पक्षों पर उनको पूरा करना अनिवार्य है क्योंकि यही चीजें निकाह के मूल उद्देश्य में शामिल हैं और शरीअत ने इसे अनिवार्य करार दिया है।

(2) निकाह के समय ऐसी शर्त लगाना जो निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध है जैसे पति यह कहे कि वह पत्नी की जीविका का उत्तरदायी नहीं होगा या ऐसी शर्तें जिसे शरीअत ने रोका हो जैसे पत्नी का यह शर्त लगाना कि उसे तलाक देने का अधिकार होगा तो ऐसी शर्तें अवैध होंगी और विवाह का बन्धन मान्य होगा और शर्तें अमान्य होंगी।(बज्लुल मजहूद भाग-15, पृ.227)

हदीस में आया है:

"الصلح جائز بنى المسلمين زاد احمد الا صلحا حرم حلالاً واحل حراما"

''समझौता मुसलमानों के बीच जायज़ है, इमाम अहमद ने यह जोड़ा है कि वह समझौते जायज़ नहीं जिनमें हलाल हराम हो जाये, हराम हलाल हो जाये, इस राय पर तमाम लेखकों के बीच सहमति है।

अतिरिक्त शर्त लगाना:

तीसरी किस्म की शर्त अगर लगाई जाये तो निकाह सर्वसम्मति से मान्य

होगा लेकिन शर्त को पूरा करने के मामले में पुराने ज़माने से ही मतभेद है। हनफी, मालिकी और शाफई का यह दृष्टिकोण है कि मर्द के लिए ऐसी शर्तों का पूरा करना आनिवार्य नहीं है। इसके विपरीत इमाम हम्बल का दृष्टिकोण यह है कि पति पर ऐसी शर्त अनिवार्य है और यदि यह पूरा न हो तो पत्नी को निकाह तोड़ने का अधिकार होगा।(अल-मुग़नी भाग-7, पृ.17)

इसके पक्ष में तर्क:

ا–یاایھا الذین آمنوا اوفوابالعقود– (القرآن)

(ऐ ईमान वालो! अपने वादों को पूरा करो)(क़ुरआन)

(2) अक़्बा बिन आमिर से रिवायत है, रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने फरमाया कि शर्त के लिए आवश्यक है कि उसे पूरा किया जाये, जिन शर्तों के आधार पर तुमने अपने लिए शर्मगाहों को हलाल किया है। (हदीस)

(3) मुसलमानों पर शर्तों का पूरा करना आवश्यक है, (हदीस)

(4) असरम से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने एक औरत से निकाह किया और उसी के घर में रहने की शर्त लगाई फिर उसको वहाँ से स्थानान्तरण का इरादा किया। इस पर उन दोनों में झगड़ा हुआ। बात हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रजि.) तक पहुँची तो आपने शर्त को पूरा करने का आदेश दिया।

शैखुल-इस्लाम इब्ने तैमिया ने लिखा है कि निकाह और लेन-देन में शर्त को पूरा करना अनिवार्य है इस लिए पति के ऊपर लगाई गई शर्त पर अमल करना आवश्यक होगा।

२३. विरोध में तर्क:

शाफेई, हनफी, और मालिकी के दृष्टिकोण से शर्तों का पूरा करना अनिवार्य नहीं है, इनके तर्क निम्नलिखित हैं।

(1) हर वह शर्त जो अल्लाह की किताब में न हो वह अमान्य है यद्यपि वह संख्या में 100 हों।

(2) मुसलमानों पर शर्त पूरा करना आवश्यक है लेकिन वह शर्त नहीं जिससे हराम हलाल हो जाये और हलाल हराम हो जाये।[3]

उपरोक्त शर्तें हलाल को हराम कर देती हैं जैसे दूसरा निकाह करना बीवी के साथ सफर करना हलाल है लेकिन यदि इसमें शर्त लग जाये तो हराम हो जाते हैं।

दोनों पक्षों की दलीलों और तर्कों का मूल्यांकन करते हुए कुछ लोग इमाम हम्बल की राय को मानते हुए फतवा देने के पक्षधर हैं उनमें खालिद सैफुल्लाह रहमानी, मौ. उबैदुल्लाह असअदी, मौ. जुबैर अहमद कासमी, मौ. महफूजुर्रहमान सा., मौ. नज़र तौहीद साहेब मौ. मुहम्मद इमरान साहब, मौ. रियासत अली कासमी साहेब, आदि हैं। और अधिकतर हज़रात दलीलों और उद्देश्यों के अनुसार जम्हूर फुकहा (Jurists) के मत को अधिक मज़बूत बताते हैं।

तलाक का अधिकार सौंपने का मामला:

तलाक का अधिकार सौंपने की वैधता पर मौलाना शम्स पीरज़ादा के अलावा सबमें सहमति है और इस बात पर सर्वसम्मति है कि तलाक का अधिकार सौंपने के बाद उसे अपनी तरफ लौटाने का अधिकार पति को नहीं रहता। तफ्वीज़-ए-तलाक या अधिकार सौंपने पर लोगों ने विस्तार पूर्वक चर्चा की है।

निकाह में शर्त की जिन तीन परिस्थितियों का सवाल-नामा में उल्लेख है लगभग सभी लोगों ने बड़े विस्तार से चर्चा करते हुए कुछ शर्तों को रखकर तीनों हालतों वैध करार दिया है जिनका सारांश निम्नलिखित है:

1. निकाह से पहले तलाक का अधिकार सौंपने के लिए आवश्यक है कि तलाक का अधिकार सौंपने का सम्बन्ध निकाह से हो।
2. निकाह के समय तलाक का अधिकार सौंपने के लिए अनिवार्य है कि औरत की ओर से उसे स्वीकार यिा गया हो।
3. निकाह के बाद तलाक का अधिकार सौपने की वैधता के लिए कोई शर्त नहीं है।

मौलाना महफूजुर्रहमान शाहीन जमाली, मौ. शहबाज़ आलम नदवी और मौ. इसरारुल-हक़ साहब के दृष्टिकोण में अगर तलाक का अधिकार निकाह से पहले

सौंप दिया गया हो तो इसकी वैधता पर आपस में मतभेद है। तलाक का अधिकार सौंपने की स्थिति में विभिन्न लोगों ने अपना मत स्पष्ट किया है कि हकीमुल-उम्मत अशरफ अली थानवी का मत जो तलाक का अधिकार सौंपने के सम्बन्ध में ''अल-हीलतुल-नाजिज़ा'' में विस्तार से आया है उसपर भरोसा किया जाये क्योंकि वह एक शोधकर्ता और फकीह थे और उनका प्रयास सामूहिक प्रयास था।

तलाक़ का अधिकार सौंपने की शर्त में कुछ और बन्दिशें बढ़ा दी जायें और तलाक का अधिकार सीधे तौर पर पत्नी को न दिया जाये बल्कि उसमें कुछ पाबन्दियाँ लगा दी जायें ताकि जो तलाक रंजिश, आवेश, मानसिक असंतुलन, नासमझी के कारण होता हो उस पर रोक लगाई जा सके और आवश्यकता के अनुसार पति के अत्याचार से छुटकारा दिया जा सके और पत्नी भी बेलगाम न रहे।

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी ने औरत को तलाक का हक़ सौंपने के बजाये दारुल-क़ज़ा (शरई अदालत) को सौंपने का समर्थन किया है।

तलाक़ और दूसरा निकाह में अतिरिक्त मह्र की शतः

शोधपत्र लेखक इस मामले में दो मत देते है। कुछ लोगों ने साहेबैन की राय को वक्त की ज़रूरत और काबिले-तरजीह बताया है। लेकिन कुछ लोगों ने इसको समस्या का पूरा हल नहीं समझा है और कुछ लोग इसको तीन तलाक की शर्त के साथ जोड़ते हैं ताकि तीन तलाक मह्र के डर से न हो। इस मत में निम्नलिखि़त उलमा का नाम आता है- जैसे खालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी, मौ. अतीक अहमद साहब, मौ. उबैदल्लाह असअदी, मौ. अख्तर इमाम आदिल साहब, मौ. जुनैद आलम साहेब, मौलाना नज़र तौहीद साहब, मौ. रियासत अली कासमी, मुफ्ती मुहम्मद ज़ैद साहब, मौ. आले मुस्तफा मिस्बाही साहेब, अब्दुल करीम पालन पुरी साहब, मौ. जुबैर अहमद साहब, मौ. नसीमुद्दीन कासमी साहब, मौ. महफूजुर्रहमान साहब के मतानुसार इमाम अबू हनीफा का मत मानने योग्य है क्योंकि अगर आवश्यकता को ध्यान में रखा जाये तो भी साहिबैन का मत

लाभदायक नहीं है और तर्क विरुद्ध है क्योंकि मह्र बढ़ाने का अर्थ तलाक को कम करना है मगर शरीअत में इसकी कोई हैसियत नहीं है और तार्किक रूप से भी लाभदायक नहीं बल्कि हानिकारक है क्योंकि पति महर की अधिकता से तलाक नहीं देगा बल्कि अत्याचार बढ़ाता रहेगा।

मौलाना मुफ्ती जुनैद आलम ने तलाक और दूसरा निकाह दोनों को अलग-अलग रखा है, उनका कहना है कि तलाक के साथ जो दो महर का मामला है उसमें साहिबैन का मत ठीक है लेकिन दूसरे निकाह में जो दो महर की शर्त रखी गई है उसमें इमाम अबू हनीफा का मत माना जाये।

तलाक़ के दुरुपयोग पर पाबन्दी की किस्में:

कुछ लोगों का कहना है कि पति पर यह शर्त लगा दी जाये कि वह बिना किसी दोष के तलाक नहीं देगा और अगर देगा तो वह मुतल्लक़ा (परित्यक्ता) को कुछ विशेष धन (मताअ) देगा (मौलाना महफूजुर्रहमान साहब) बिना दोष के तलाक देने पर अनुशासनात्मक दण्ड तय किया जायेगा जैसे छः महीने की कठोर कैद जिसकी मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड सिफारश करे।

निकाह के समय नौकरी की शर्तः

इसमें प्रतिनिधियों के दो मत हैं:

(1) मौलाना रियासत अली कासमी, मौ. अख्तर इमाम साहब मौ. शम्स पीरजादा साहब, मौ. मफूजुर्रहमान शाहीन जमाली साहब मौलाना मुम्ताज आलम मिस्बाही साहेब की राय में अगर औरत शरीअत के अनुसार परदा और हया के साथ शरीअत की सीमा के अन्दर रहते हुए नौकरी करे तो यह शर्त वैध होगी।

(2) दूसरे पक्ष का यह कहना है कि यदि अपने घर की जिम्मेदारी और बच्चों की देख भाल करने में नौकरी रुकावट बनती है और जो रकम वह नौकरी में प्राप्त करेगी, अगर निकाह के बाद पति उतना धन प्राप्त कर लेता है तो पत्नी को नौकरी की जरूरत नहीं है और ऐसी शर्त लगाना अवैध और अमान्य हैॅ यह मत निम्नलिखित उलमा का है।

(मौ. अनीसुर्रहमान कासमी, मौ. ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी, मौ. अतीक़ अहमद कासमी, मौ. नज़र तौहीद, मौ. उबैदुल्लाह असअदी साहब, मौ. मुहम्मद अबू बक्र सा., मौ. मुहम्मद ज़ैद सा., मौ. जुबैर अहमद सा., मौ. मुफ्ती जुनैद आलम सा., मौ. जफरुल-इस्लाम आजमी साहेब, मौ. नूरुल-हक रहमानी सा., मौ. आल-ए-मुस्तफ़ा सा.)

☆☆☆

समस्या की प्रस्तुति

प्रस्तुत समस्या

निकाह में शर्त और शर्त लगाई गई मेहर का मसला

मौ० ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

विचाराधीन समस्या से सम्बन्धित सभी लेखकों के दृष्टिकोण और दलीलों का विश्लेषण और वरीयता प्राप्त मत और उनको वरीयता देने के कारण निकाह में शर्त और शर्त लगाई गई महर का मामला निकाह में शर्त के सवाल पर तलाक का अधिकार सौंपने के अतिरिक्त दो महत्वपूर्ण सवाल विचाराधीन हैं और यह दोनों प्रश्न इस पृष्ठभूमि में उठाये गये हैं। भारत में मौजूदा हालत में शरीअत के कानून और उनमें ढ़ील के दुरुपयोग से कुछ ऐसी बुराइयाँ पैदा हो गई हैं जो शरीअत के उद्देश्य के विपरीत हैं। अधिकतर इसमें अत्याचार बहुत बढ़ जाते हैं इसीलिए दोनों जुड़े हुए मामलों को आपके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है।

इन सवालों पर कुल 51 जवाब मिले है जिनमे 28 जवाब इफ्ता (फतवा के माहिरों) के विद्वानों के हैं जिनके नाम निम्नवत् हैं:

मौ. आले मुस्तफ़ा मिस्बाही, मौ. फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौ. इक़बाल अहमद कानपुरी, मौ. अतीक़ अहमद क़ासमी, मुफ़्ती अब्दुर्रहमान पालन पुरी, मौ. अब्दुल क़य्यूम पालन पुरी, मौ. अबुल हसन साहब, मौ. अबू सुफ़ियान साहेब, मौ. अब्दुल जलील क़ासमी, मौ. हबीबुल्लाह क़ासमी, मौ. शाहीन जमाली, मौ. ज़ुबैर अहमद क़ासमी, जनाब शम्स पीरज़ादा, मौ. उबैदुल्लाह असअदी, मौ. ज़फ़रुल-इस्लाम आज़मी, डा. क़ुदरतुल्लाह बाकवी, मौ. वलीउल्लाह क़ासमी, मुफ़्ती मुहम्मद ज़ैद, मौ. अख्तर इमाम आदिल, मौ. सनाउल हुदा कासमी, मौ. अखलाकुर्रहमान, मौ. फज्लुर्रहमान रशादी, मौ. मुहम्मद अन्जर सनाबुली। और इन पंक्तियों के प्रस्तुत कर्ता, खालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी।

इसके अतिरिक्त, इस्लामी फिक्ह अकेडमी, इमारत-ए-शरईया फुलवारी

शरीफ पटना, दारुल उलूम सबीलुस्सलाम हैदराबाद और दारुल उलूम हैदराबाद के तखस्सुस-फिल-फिक्ह (इस्लामी शरीअत पर विशेष अध्ययन) के 23 विद्यार्थियों ने बड़ी मेहनत के साथ अपने लेख प्रस्तुत किये हैं।

निकाह में शर्त के सिलसिले में इस बात पर सभी लेखकों की सहमति है कि ऐसी शर्तें जो उन्हीं कर्त्तव्य व अधिकार को उजागर करती हैं जिनका उल्लेख शरीअत ने निकाह के सिलसिले में किया हो वह भरोसे योग्य हैं लेकिन साथ-साथ इसपर भी सहमति है कि ऐसी शर्त जो निकाह के अनिवार्य कर्त्तव्य व अधिकार के विपरीत हों और जिनसे निकाह के कानून में टकराव हो तो ये स्वीकार्य नहीं है लेकिन ऐसी शर्तों के बावजूद निकाह स्थापित हो जाता है। लेकिन अल्पकालिक निकाह (मुताअ) में ऐसी शर्तें लागू नहीं होंगी। ऐसी अतिरिक्त शर्तें जिनमें औरत को लाभ हो और शरीअत ने न उसका आदेश दिया हो न उससे रोका हो तो ऐसे निकाह के उचित होने सहमति है और ऐसी शर्तें निकाह में मान्य होंगी। और निकाह मान्य होगा। लेकिन इस सिलसिले में मतभेद है कि अगर मर्द निकाह के समय शर्त को स्वीकार कर ले और बाद में उसको पूरा न करे तो उससे क्या प्रभाव पड़ेगा?

अधिकांश फुक़हा के मतानुसार ऐसी शर्तों का पूरा करना अनिवार्य नहीं है। लेकिन हम्बली उलमा के मतानुसार भी इसका पूरा करना अनिवार्य है लेकिन वरीयता (Preference) किसको दिया जाये? मौ. उबैदुल्लाह असअदी, मौ. वलीउल्लाह कासमी, मौ. मुहम्मद मुस्तफा नदवी, और लेखक स्वयं खालिद सैफल्लाह रहमानी का कहना है कि भारत की मौजूदा स्थिति में इमाम हम्बल की राय अपनाई जा सकती है क्योंकि यह इज्तेहाद का मामला है और दोनों पक्षों के तर्क बहुत मजबूत हैं जिनका विस्तारपूर्वक उल्लेख करना संभव नहीं है लेकिन तमाम लोगों ने अधिकांश फुकहा की राय को वरीयता दी है और उनके तर्क और फतवा को कानून के अनुसार वरीयता योग्य समझा है।

यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है कि कुछ लोगों ने इमाम अबू हनीफा के यहाँ भी शर्त को पूरा करना अनिवार्य करार दिया है लेकिन कुछ लोगों ने यह कहा है कि इमाम हम्बल के मत में ऐसी शर्तों का पूरा करना अनिवार्य है और

दूसरों के मत में अनिवार्य नहीं है लेकिन फुकहा की बातों का गहन अध्ययन किया जाये तो यह मालूम होता है किया यह समझना कि हनफी उलमा की राय में शर्त का पूरा करना अनिवार्य नहीं है यह गलत है और हमारा मानना है कि यह शर्तें आमतौर पर मौलिक हैं और हनफी उलमा का यह कहना है कि यह शर्तें शरई तौर पर पूरा करना वाजिब हैं इसमें कोई छूट नहीं है। इसीलिए इमाम अबू बक्र राजी जस्सास ''ऐ ईमान वालो! शर्तों को पूरा करो'' के सम्बंध में कहते हैं।

''जब इन्सान अपने आपको किसी शर्त में बांध ले तो साधारणत: उसको पूरा करना अनिवार्य है जब तक कि कोई विशेष समस्या न आ जाये।'' (अहकामुल-कुरआन भाग-3 पृ.286)

अल्लामा ऐनी ने हनफी फुकहा के दृष्टिकोण को इस तरह उद्धृत किया है।

पति को अल्लाह से डरने और शर्तों को पूरा करने का आदेश दिया जायेगा और इस सिलसिले में आदेश अन्तिम और बाध्य होगा। (उम्दतुल-क़ारी भाग-20 पृ.140)

मौलाना अनवर शाह ने निकाह में शर्त के सिलसिले में हनफी उलमा का दृष्टिकोण बयान करके लिखा है।

''जो शर्तें निकाह के विरुद्ध नहीं हैं वह वैध है शरई तौर पर उनका पूरा करना अनिवार्य है और इसमें कोई छूट नहीं है। इसी तरह यह भी ठीक नहीं है कि हम्बली उलमा की दृष्टि में शर्त का ज्यों का त्यों पूरा करना अनिवार्य है। हम्बली आलिम फरमाते हैं।

''शर्त का पूरा करना वाजिब नहीं बल्कि सुन्नत है'' (अल-इक़्नाअ भाग-3 पृ. 190)

मतभेद मात्र इस बात पर है कि यदि पति ने उस शर्त को पूरा नहीं किया तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। हनफी उलेमा कहते हैं कि जो महर तय हो गई है उसके बजाय महर मिस्ल अर्थात अगर औरत के कुटुम्ब में जो महर रीति के मुताबिक चली आ रही हो तो अगर वह तय की गई महर से अधिक है तो वही महर लागू होगी जो पहले से चली आ रही है। और हम्बली उलेमा की राय मं

औरत को अलग होने की माँग का अधिकार होगा।

इस स्पष्टीकरण के बाद यह बताना है कि दोनों पक्षों के तर्क मजबूत हैं और सहाबा के दौर में भी इस पर मतभेद रहा है। इसलिए मामला तर्कों के जोर और जोरदार होने का नहीं और न ही हम ऐसी स्थिति में हैं कि ऐसे मामले में अन्तिम आदेश देने की हिम्मत करें। मामला यूँ है कि भारत की परिस्थिति में क्या चीज उचित है और जिन लोगों ने हम्बली उलमा के दृष्टिकोण को स्वीकार्य माना है उनका मानना भी यही है। लेकिन विचार किया जाय तो यह मामले का वास्तविक हल नहीं है। मर्द अगर शरीअत की सीमा और प्रतिबन्धों को लाँघ कर दूसारा निकाह कर ले तो यदि एक आदमी पत्नियों के अधिकार को पूरा करने और एक से अधिक पत्नियों के बीच न्याय करने में बिना अल्लाह के डर और आखिरत (परलोक) की जवाबदेही से लापरवाह हो जाये तो उससे यह आशा करना कि बीवी के अलग हो जाने की डर से वह सीधे रास्ते पर दृढ़ रहेगा जाहिरी तौर पर लाभदायक नहीं लगता। और पत्नी को हनफी फिक्ह के दायरे में रहते हुए तलाक का अधिकार सौंपने का हक मिल सकता है।

इस लिए निकाह में शर्त लगाने के बजाये महर में शर्त लगाने पर विचार करना चाहिए। इमाम अबू हनीफा की राय में जो पहला महर तय हो वही असली महर है और जिस महर में शर्त लगाकर प्रस्तुत किया जाये वह महर अमान्य है। इसलिए अगर पति ने शर्त पूरी की तो पहला महर अनिवार्य होगा और अगर शर्त नहीं पूरी की तो महर मिस्ल पहली महर से अधिक है तो महर मिस्ल अनिवार्य (वाजिब) होगा। यही मत इमाम मालिक और इमाम शाफई का भी है लेकिन साहिबैन के दृष्टिकोण में दोनों महर मान्य हैं। जैसे अगर पति ने यह शर्त रखी कि यदि वह एक पत्नी की मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं किया तो महर दस हजार होगा अगर दूसरा निकाह किया तो महर 20 हजार होगा। महर का भुगतान इसी हिसाब से अनिवार्य होगा और हम्बली उलमा की भी यही राय है।

सेमीनार में 33 लेखकों ने साहिबैन के दृष्टिकोण को वरीयता दी है जिनके नाम निम्नलिखित हैं:-

मौ. अतीक अहमद, मौ. अब्दुल जलील, मौ. अख्तर इमाम आदिल, मौ.

वलीउल्लाह कासमी, मौ. रफीक बिन आदम, मौ. सनाउल-हुदा कासमी, मौ. अखलाकुर्रहमान, मौ. हबीबुल्लाह कासमी, मौ. फज्लुर्रहमान रशादी, डा. कुद्रतुल्लाह बाकवी, और खालिद सैफुल्लाह रहमानी। जब कि 11 प्रतिनिधियों ने इमाम अबू हनीफा की राय को वरीयता दी है जिनके नाम निम्नलिखित हैं।

मुफ्ती मु. जैद, मौ. जुबैर अहमद कासमी, शम्स पीरजादा, मौ. मुहम्मद मुस्तफा नदवी, मौ. अब्दुल कय्यूम पालन पुरी, मौ. अबू-सुफियान, मौ. महफूजुर्रहमान, मौ. फज्लुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौ. महफूजुर्रहमान शाहीन जमाली, मौ. उबैदुल्लाह असअदी। आमतौर पर लेखकों नें इस समस्या पर दोनों के मत और तर्क पर विस्तार से चर्चा नहीं की है और स्वयं उन लोगों ने संक्षेप से काम लिया है जो इस मतभेद के बयान करने वाले हैं लेकिन मेरा यह मानना है किया मौजूदा परिस्थिति में साहिबैन की राय पर फतवा देना उचित है परन्तु इसमें निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाये।

(1) भारत में इस समय अज्ञानता, अशिक्षा, शरीअत से अनभिज्ञता और इस्लामी वातावरण से दूरी और शरई अदालतें न होने के कारण, और दूसरे धर्मों के लोगों के बीच रहना, और उनके सभ्यता से प्रभावित होना, ऐसी हक़ीकतों को स्वीकार न करना रेत में मुँह छुपाने जैसा है। भारत में मुसलमानों में एक से अधिक पत्नी का रिवाज हिन्दुओं की तुलना में कम है इसी कारण तलाक भी बहुत सी सामाजिक बुराइयों के बावजूद मुस्लिम समाज में अधिक नहीं है। लेकिन इसके बावजूद अगर सर्वेक्षण किया जाये तो यह पता चलेगा कि 80% तलाक अकारण होते हैं और इसी अनुपात में दूसरा विवाह अत्यन्त विचार विमार्श के बाद किया जाये न कि सामयिक प्रक्रिया के दबाव में किया जाये।

दूसरे निकाह के मामले में शरीअत का सहारा तो लिया जाता है लेकिन उसके बाद न्याय और इन्साफ में शरीअत को छोड़ दिया जाता है इससे मुस्लिम समाज को जो हानि होती है वह तो होती ही है और दूसरे समाजों में उसकी हँसी उड़ाई जाती है और पवित्र शरीअत पर चोट की जाती है। इसका कारण भी घुमा-फिरा कर हम ही हैं। ऐसी परिस्थिति में महर तय करना किसी सीमा तक

इन परेशानियों से बचा सकता है। और आवश्यक होने पर एक मसलक को छोड़कर दूसरे मसलक को अपनाया जा सकता है यद्यपि उसके तर्क में कमजोरी हो।

विद्वानों से यह बात नहीं छिपी है कि बुजुर्गों ने कई अवसरों पर तर्क के मुकाबले में ऐसी राय को वरीयता दी है जिससे लोगों को आसानी हो। अल्लामा शामी ने एक मामले में इमाम साहब की तुलना में साहबैन की राय के मुताबिक फतवा दिया है। विद्वानों ने इमाम साहब के तर्क को अधिक मजबूत बताया है मगर आसानी के लिए फतावा में साहबैन की राय को लिया है।

''आसानी को मजबूत तर्क पर वरीयता है'' (रद्दुल-मुख्तार भाग-2 पृ.-21)

मानो यह फतवा देने के लिए एक उसूल सा बन गया है। जिन परिस्थितियों में एक से अधिक रायें हो और किसी की राय स्पष्ट न हो कि कौन सी उचित है और किस पर मुफ्ती को वरीयता देनी चाहिए। वरीयता का सबसे बड़ा कारण यह है कि जिसमें लोगों को अधिक असानी हो उसको वरीयता दी जायेगी।

यदि यह कहा जाये कि बुजुर्गों ने बातें तो नकल कर दी हैं लेकिन वरीयता किसको दी जाये यह नहीं बताया है। और कौन सी बात उचित होगी उसमें मतभेद है तो मैं यह कहूँगा कि बुजुर्गों के तरीके पर अमल किया जाये, अर्थात जो सबसे अधिक आसान हो और लोगों के मामलात के मुताबिक मजबूत तर्क का ख्याल रखते हुए अमल किया जायेगा।

हनफी फिक्ह के विस्तार में ऐसी बातें भी अधिकतर आयी हैं जिनमें लोगों की आसानी के लिए इमाम साहब की राय पर साहिबैन की राय को वरीयता दी गई है। उदाहरण स्वरूप इमाम अबू हनीफा कहते हैं कि रोटी का कर्ज वजन और गिनती से नहीं लिया दिया जा सकता पर लेकिन इमाम मुहम्मद का कहना है कि दोनों तरह को कर्ज लेन-देन हो सकता है और इसी पर फतवा है। (रद्दुल-मुख्तार भाग-2 पृ. 208)

पेड़ पर फल अगर है और उसे खरीद लिया जाये तो इमाम अबू हनीफा की राय में अनुचित और नाजायज है और इमाम मुहम्मद की राय में उचित है

और इसी पर फतवा है। (दुर्रुल मुख्तार भाग-2 पृ.-43)

अवैध खरीद से अगर खरीदने वाले ने कोई चीज खरीदी ओर उसके पास से वह नष्ट हो गई तो खरीदने वाला उसका जिम्मेदार नहीं होगा यह इमाम साहब का दृष्टिकोण है लेकिन साहबैन की राय में खरीदने वाला उसका जिम्मेदार होगा। (रद्दुल-मुख्तार भाग-2 पृ.-112)

रेशम के कीड़े और अण्डे का क्रय विक्रय इमाम साहब की राय में जायज नहीं और यही राय अबू-यूसुफ की है इमाम की राय में जायज है ओर उसी पर फतवा है।

हराम चीजों के माध्यम से इलाज इमाम साहब और इमाम मुहम्मद की राय में वैध नहीं है लेकिन इमाम अबू-यूसुफ की राय में जाये है और इसी पर फतवा है। (रद्दुल-मुख्तार भाग-6 पृ.-341)

(2) कभी-कभी साहबैन के दृष्टिकोण को तर्क के कारण वरीयता दी जाती है जैसे।

इमाम अबू-हनीफा की राय में मग़रिब का समय सफेद धारी डूबने तक है ओर साहबैन की राय में लाल धारी डूबने तक है। और फतवा साहबैन के कथन पर है। (वकाया की टीका, भारतीय प्रकाशन भाग-1 पृ.-51)

शुक्र का सज्दा इमाम अबू-हनीफा की दृष्टि में नहीं है इसलिए वह अवांधित है। इमाम अबू यूसुफ व मुहम्मद के दृष्टिकोण में पसन्दीदा है और उसपर सवाब (पुण्य) भी है और इसी पर फतवा है। (वकाया की टीका भाग-1 पृ.-135-36)

इमाम अबू हनीफा की राय में तीस से अधिक और 40 से कम गायें हों तो इसी के अनुसार 30 से अधिक जानवरों में भी जकात वाजिब होगी जिसको फिक्ह में अफ्व कहते है साहबैन के दृष्टिकोण में जकात आवश्यक नहीं होगी और इसी पर फतवा है (रद्दुल-मुख्तार भाग-2 पृ.-280)

इमाम अबू हनीफा की राय में जहाँ जकात में बकरी वाजिब हो वहीं 6 माह का दुम्बा काफी न होगा। साहबैन की राय मकं पर्याप्त होगा और इसी पर फतवा है। क्योंकि इमाम इब्ने हुमाम का कथन है''(الدليل حجة अद्दलीलो

हुजज्जतुन, दलील निर्णायक होती है) (रद्दुल-मुख्तार भाग-2 पृ.-282)

इमाम अबू हनीफा की राय में घोड़े पर जकात वाजिब है लेकिन साहबैन की राय में नहीं है और इसी पर फतवा है। (रद्दुल पुख्तार भाग-2 पृ.-282)

इद्दत यदि बीच महीने से प्ररम्भ हो तो इमाम अबू हनीफा की राय में 90 दिन गुजारने होंगे और साहिबैन की राय मकं दोनो महीने चाँद के हिसाब से होंगे और प्रारम्भ का पहीना 30 दिन के हिसाब से पूरा किया जायेगा। (अल-बहरुर्रायक़ भाग-3 पृ.-249)

(3) इसी से मिलती जुलती बात यह है कि अगर इमाम साहब के कथन की तुलना में अगर साहिबैन के कथन में अधिक सावधानी हो तो साहिबैन के कथन को वरीयता दी जायेगी। जैसे अगर ठण्डा पानी हानिकारक हो और गर्म पानी में भी खतरा है तो इमाम साहब की राय में गुस्ल के बजाय तयम्मुम कर लेना चाहिए। साहबैन की राय में गर्म पानी से गुस्ल वाजिब है और सावधानी के तौर पर इसी पर फतवा है।

इमाम अबू हनीफा के दृष्टिकोण में कुछ परिस्थितियों में नबीज़ (कमतर दर्जे का अल्कोहल) का पीना और उससे वजू करना जायज है और कपड़े में अगर लग जाये तो नापाक नहीं होता। इमाम मुहम्मद की राय में न उसका पीना जायज है न उससे वज़ू करना जायज़ है और कपड़े में लग जाये तो धोना अनिवार्य है। सावधानी को ध्यान में रखते हुए इन्हीं के कथन पर फतवा दिया गया है। (तातार खानिया भाग-1 पृ.-225)

इमाम साहब के दृष्टिकोण से अत्यन्त घृणा और गुनाह के साथ यह जायज है कि मुसलमान एक गैर मुस्लिम को शराब बेचने का आदेश दे और उसके मूल्य को उपयोग में ला सकता है और सहबैन की राय में अवैध है और साहिबैन की राय में फुकहा ने वरीयता दी है (अद्दरुल-मुख्तार भाग-4 पृ.-135)

निकाह के कुबूल होने के सिलसिले में अगर विवाद हो जाए, औरत कहे कि मैंने इनकार कर दिया था, मर्द कहे कि मैं खामोश हो गया था और गवाह मौजूद न हों तो इमाम की राय में बिना कसम खिलाये औरत की बात पर भरोसा किया जायेगा, और साहबैन की राय में औरत से हलफ़ (शपथ) दिलाया जायेगा

और इसी पर फतवा है (रद्दुल-मुख्तार-लिल-फतवा मजम-उल-अन्हार, भाग-1 पृ.-255)

इमाम अबू हनीफा की राय में मुक्तदी (इमाम के पीछे नमाज अदा करने वाला) इमाम के साथ तक्बीर तहरीमा ''अल्लाहु अकबर'' कहेगा, और साहबैन का कथन हे कि इमाम के तहरीमा (नीयत बाँधने) बाँधने के बाद कहेगा। (हिन्दीया भाग-1 पृ.-68)

ये उदाहरण नमूना के तौर पर प्रस्तुत किये गये हैं यदि सारे मसाइल को लिया जाये जिनमें साहबैन के कथन पर फतवा है तो कई किताबों की आवश्यकता हो जायेगी। यह बात स्पष्ट है कि जरूरत व मसलेहत, दलील की ताकत और सावधानी को देखते हुए बहुत मौकों पर साहबैन को वरीयता दी गई है। इन पंक्तियों का लेखक सेराजिया (एक किताब) के इस कथन से अनभिज्ञ नहीं है, कि: फतवा पूरी तरह इमाम अबू हनीफा की राय पर होता है फिर साहबैन इमाम अबू यूसुफ, इमाम मुहम्मद, इमाम जफर, इमाम हसन बिन ज़ियाद के दृष्टिकोण के अनुसार होगा।

यद्यपि सेराजुद्दीन औदी ने इमाम साहब की तुलता में साहबैन के कथन को पूरी तरह वरीयता दी है। परन्तु वरीयता उसी बात को होगी जिसको उन्होंने कमतर दर्जे में रखा है। कुछ लोगों का कहना है कि अगर एक तरफ इमाम अबू हनीफा हों और दूसरी तरफ साहबैन तो मुफ्ती को अधिकार है।

इसी को हावी कुदसी ने भी वरीयता दी है क्योंकि फैसले और गवाही में इमाम अबू यूसुफ ज़विल अरहाम (वह रिश्तेदार जो माँ की तरफ से हों) के मामलों में इमाम मुहम्मद और 17 मसलों में केवल इमाम जफर का कथन फतवा के लिए वरीयता प्राप्त माना गया है तो साहबैन के कथन पर फतवा से मना करना समझ से बाहर है। (रद्दुल-मुख्तार भाग-1 पृ.-94)

अब यहाँ शामी की बात भी ध्यान देने योग्य है- ''हनफी क़ाज़ी अगर इमाम अबू यूसुफ या इमाम मुहम्मद या इमाम साहब की राय में से किसी की राय पर फतवा दे तो यह इमाम अबू हनीफा के विरुद्ध नहीं माना जायेगा। इन लोगों का कहना है कि यह लोग जो कुछ कहते हैं वह इमाम साहब के

सिलसिले की ही बात होती है।

इस लिए जो फिक्ही दृष्टिकोण ऊपर उल्लिखित हैं उनको देखते हुए यह कह सकते हैं कि मशायख़ (बुजुर्गों) का आम रवैया यही है कि आसानी और परिस्थिति, दलील, अल्लाह का डर, और सावधानी को ध्यान में रखते हुए कभी-कभी साहबैन के कथन को भी तरजीह दी जाती है। जिन मसलों पर चर्चा हुई है इनमें तीनों बातें सम्मिलित हैं जैसा कि उल्लेख हो चुका है। तर्क व दलील के आधार पर साहबैन की राय की तरफ झुकाव होता है। मौजूदा परिस्थिति में यह सामाजिक दृष्टिकोण से भी अधिक निकट है।

और क़ुरआन मजीद के आदेश اوفوا بالعقود 'वादों से वफा करो' ओर हदीस احق الشروط ماستحللتم به الفروج 'जिन शर्तों के द्वारा तुमने शर्मगाहों को हलाल किया है वह शर्तें वफा की ज़्यादा हकदार होती हैं'

इन दलीलों के अनुसार शर्त के मुताबिक असर पड़ने में सावधानी और दलीलों का एहसास अधिक होता है और फकीहों (Jurists) का यह कहना कि اِعمال الكلام اولىٰ من اهمالِه 'जिम्मेदार आदमी की बात को सफल बनाना उसको बेकार छोड़ देने से अच्छा है' फुकहा के इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस मसले में साहबैन का कथन वरीयता प्राप्त है।

तलाक देने और दूसरे निकाह की योग्यता न होने के बावजूद दूसरा निकाह करने से समाज में बिगाड़ पैदा होता है तो तलाक और दसरे विवाह के साथ महर अधिक लगाने की शर्त रखना भी बिगाड़ का कारण हो सकता है जिसमें कोई पाबन्दी न हो, इस परिस्थिति में यह डर भी है कि मर्द तलाक न देगा और न दूसरा विवाह करेगा ओर औरत पर अत्याचार करेगा जो एक बदले की भावना के अधीन व्यवहार होगा इसलिए यह उचित है कि महर इस तरह तय किया जाय कि जैसे जैनब का महर दस हजार होगा और काजी शरीअत से अनुमति लिए बिना जैनब को तलाक देगा या उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह करेगा तो महर पचास (50) हजार होगा-इस तरह ज्यादा महर जहाँ मर्द को अनुचित व्यवहार से रोकेगा वहीं काज़ी शरीअत से इजाजत की पाबन्दी के कारण जरूरत के ही आधार पर निकाह व तलाक से वह लाभान्वित हो पायेगा।

प्रस्तुत समस्या

तलाक़ और दूसरे निकाह के साथ महर बढ़ाने की शर्त

मौ. अब्दुल जलील क़ासमी

الحمد لله رب العٰلمين والصلوة والسلام على سيد الانبياء والمرسلين وعلى آلهٖ واصحابه اجمعين۔

उपस्थित सज्जनो!

तलाक़ और दूसरे विवाह में अतिरिक्त महर की शर्त के बारे में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं उनके प्रकाश में समस्या की प्रस्तुति की जिम्मेदारी मुझको सौंपी गई है। इस सिलसिले में 52 लेख और एक लेख का सारांश मुझे मिला। एक लेख फ़ुलवारी शरीफ में मिला जिसमें साराँश और दो लेखों के लेखकों के नाम मालूम न हो सके। माननीय लेखकों ने अपने अपने लेख में तलाक या दूसरे निकाह में अतिरिक्त महर को अनुचित बताया है। मुस्लेहुद्दीन अहमद ने इस विषय पर कोई बात नहीं की है मौलाना अबुल हसन अली साहब ने अपने लेख में इन दोनों विषयों पर विस्तार से चर्चा की है लेकिन अपनी राय नहीं दी है और इसे उम्मत के बड़ों पर छोड़ दिया है।

मौलाना फ़ुजैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी साहब ने तलाक की स्थिति में अतिरिक्त महर पर चर्चा नहीं किया है बल्कि तलाक की अधिकता को रोकने के उपायों का उल्लेख किया है। दूसरे विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए महर की कमी व अधिकता को अनावश्यक बताया है और कोई तर्क नहीं दिया है।

शम्स पीरजादा साहब ने तलाक और दूसरे निकाह की हालत में अतिरिक्त

महर को दण्ड बताया है और इसी लिए उसे अनुचित कहा है। लेकिन साथ ही साथ उन्होंने शाम के कानून की एक दफा (Article) और शेख अब्दुल वहाब खल्लाफ की राय का उल्लेख किया है जिसका निचोड़ यह है कि यदि बिना किसी शरई कारण के बीवी को तलाक दिया जाये और काज़ी की अदालत में बे-वजह सिद्ध हो जाये तो इद्दत के समय की जीविका के अतिरिक्त इकट्ठा कुछ धन या मासिक धन काजी बीवी को शौहर से दिला सकता है साथ साथ उन्होंने एक मिस्र के न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया है।

यदि महानुभाव इसको दण्ड कहने पर जोर न दें बल्कि ऐसा सोचें कि मर्द को औरत से जो आनन्द मिला है उसका बदला औरत को महर के रूप में मिलता है। औरत अपनी आसानी के मुताबिक इस बदले में कमी या ज्यादती कर सकती है। अर्थात उसको यह अधिकार प्रात है कि वह कम महर पर निकाह कर सकती है या अधिक महर की माँग कर सकती है। अगर औरत जीवन भर पति के साथ रहती है तो उससे पति को बहुत सी दिक्कतों से छुटकारा मिलता है। यह भी हो सकता है कि कम महर पर भी पति को अधिकार देने पर राजी हो जाये लेकिन यदि पति ने उससे सम्बन्ध बनाने से मना कर दिया तो पति से मिलने वाली सारी आसानियाँ समाप्त हो गई फिर भी औरत इस महर पर राजी रहे इसलिए वह अपनी आसानियों की कमी व अधिकता की स्थिति में अपने महर में कमी या अधिक करने की शर्त रख सकती है तो इसे दण्ड कहने का कोई कारण नहीं है।

जबकि स्वयं महानुभाव ने इस बात पर सहमति व्यक्त की है कि अकारण तलाक की स्थिति में औरत को यदि इद्दत की जीविका के अतिरिक्त धन दिलाया जाये तो महर के इस अतिरिक्त धन को बढ़ोतरी कहा जाये या जीविका का नाम दिया जाये।

औरत अपने पति के लिए एक मात्र चहेती होती है और इसी आधार पर महर में कमी कर सकती है लेकिन अगर मर्द ने दूसरा निकाह कर लिया जो कोई अपराध नहीं है बल्कि शरीअत ने इसकी अनुमति दी है लेकिन उस समय चाहत बट जाती है बल्कि आधी हो जाती है और पति का ध्यान कम हो जाता

है ऐसी स्थिति में अगर अधिक महर की शर्त लगाई जाये तो उसे जुर्माना कहना उचित न होगा। मुफ्ती मुहम्मद जैद साहब, मौ. मुफ्ती मुहम्मद इकबाल कानपुरी, मौ. जुबैर अहमद कासमी ने तलाक की स्थिति में इमाम अबू हनीफा के कथन को अपनाया है। मुफ्ती जैद साहब और मुफ्ती इकबाल अहमद साहब ने खुलकर दूसरे निकाह का उल्लेख नहीं किया है और मौ. जुबैर अहमद साहब ने दूसरे निकाह की स्थिति में इमामों के मतभेद का उल्लेख किया है और अपनी राय नहीं दी है जिससे यह पता चलता है कि दूसरे निकाह की स्थिति में इन सज्जनों ने इमाम साहब को ही अमल करने योग्य करार दिया है।

मौ. नसीमुद्दीन कासमी साहब ने दूसरे निकाह की स्थिति में इमाम साहब के कथन को वरीयता दी है और तलाक की स्थिति में उसका उल्लेख नहीं किया है शायद इन की राय में भी तलाक की स्थिति में इमाम साहब का ही कथन अमल करने योग्य है।

मुफ्ती मुहम्मद जैद साहब ने इसको बड़े विस्तार से लिखा है और कहा है कि इमाम साहब का तर्क मज़बूत है। और फुकहा ने भी उसको वरीयता दी है और उसको छोड़ना उचित नहीं है। उन्होंने यह माना है, कि आवश्यकता के कारण साहबैन के मसलक को भी अपनाया जा सकता है लेकिन बड़े विस्तार के साथ इसका भी उल्लेख किया है कि साहबैन की राय को अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि साहबैन की राय को अक्ल के विरुद्ध बताया है और यह भी लिखा है कि उनकी राय को अपनाने का उद्देश्य मात्र महर के अधिक होने से मर्द तलाक़ देने का साहस नहीं करेगा और इस विचार से कि महर अधिक होने से पति तलाक नहीं दे सकेगा शरीअत के अनुसार अस्वीकार्य है और अक्ल भी इस पर नहीं ठहरती है और हजरत थानवी और हजरत गंगोही के लेखन में उसकी कमियों को बड़े विस्तार से चिन्हित किया है, और अन्त में मौलाना ने एक मुनासिब तर्क और लाभदायक उपाय फतावा आलमगीरी के हवाले से नकल किया है कि औरत के निकाह के समय यह शर्त रखे कि मर्द उसको तलाक न देगा या उसके रहते हुए दूसरा निकाह न करे तो जो महर तय हुई है उसके बदले महर मिस्ल अनिवार्य होगा और महर मिस्ल तय कर दे। यह

उस स्थिति में होगा जब पति शर्त के विरुद्ध करेगा। यह महर पति पर भार होगा और पति यदि उसे स्वीकार कर ले तो मुफ्ती साहब ने तलाक की स्थिति में महर की अधिकता को शरीअत व अक्ल के अनुसार जिन बुराइयों का उल्लेख किया है वह सारी बुराइयाँ इस उपाय में पूरी विस्तार से मौजूद हैं और जिसे शरीअत और अक्ल के अनुसार स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुफ्ती साहब का कहना है कि महर अधिक हो या महर मिस्ल हो दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखता है।

सात लेखक उलमा ने इमाम साहब के कथन को वरीयता दी है:

(1) मौलाना आकिल खाँ कासमी (2) मौ. मुहम्मद मुस्तफा नदवी (3) मौ. आले मुस्तफा मिस्बाही (4) मौ. महफूजुर्रहमान (5) मौ. अब्दुर्रहमान कासमी पालनपुरी (6) मौ. अब्दुल कय्यूम पालन पुरी (7) मौ. महफूजुर्रहमान शाहीन जमाली।मौ. अब्दुर्रहमान कासमी पालनपूरी के लेख, पर मौ. मु. हनीफ साहब कामालपुरी, और मौ. इमरान खाँ साहब ने प्रमाणित करते हुए हस्ताक्षर किये है। और मौलाना उसूली तौर पर तलाक रोकने के लिए महर बढ़ाने को उचित समझते हैं लेकिन उनका विचार है कि इमाम साहब के कथन से हटने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इमाम साहब का स्वयं कहना है कि जो शर्त पहले लग गई वह स्वीकार्य है और जो बाद में लगी वह अस्वीकार्य है। अगर महर इस तरह निर्धारित की जाये कि अगर पति पत्नी को तलाक देगा तो महर पचास हजार रूपये और तलाक नहीं देगा तो महर दस हजार होगा। इस स्थिति में अगर तलाक देगा अर्थात पहली शर्त पूरी करेगा तो पचास हजार महर अनिवार्य होगी और तलाक नहीं देगा तो महर मिस्ल देगा। यही राय मौलाना अब्दुल कय्यूम पालनपुरी की भी है।

लेकिन मौ. मुहम्मद यूसुफ खाँ कासमी ने 'बहर' का हवाला देते हुए और मुफ्ती मुहम्मद जैद साहब कासमी ने 'बहर' और 'फतहुल कदीर' का हवाला देते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि इमाम साहब की राय में शर्त के स्वीकार्य अथवा अस्वीकार्य होने में पहले या बाद में (तकदीम व ताखीर) से कोई अन्तर नहीं होगा। बल्कि असली कारण निश्चितता व अनिश्चितता है। जो शर्त निश्चित

होगी। वह मान्य होगी और जो अनिश्चित होगी वह अमान्य होगी। इस विस्तार के बाद मेरा मानना है कि दोनों सज्जन अतिरिक्त महर के लिए साहबैन को मानने पर वरीयता देंगे।

मौलाना शाहीन जमाली ने तलाक की अवस्था में महर मिस्ल को अनिवार्य बताया है। लेकिन मौलाना ने तलाक की स्थिति में कुछ धन (متعه) के तौर पर एक बड़ा धन पति पर अनिवार्य करने पर सहमति व्यक्त की है फिर भी मेरा मानना है कि बड़ा धन की मात्रा चाहे जीविका के रूप में हों, या महर मिस्ल के रूप में हो या 'मता' के रूप में हो नतीजा सबका एक दी है।

मौलाना ने बिना कारण तलाक की स्थिति में मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के माध्यम से सरकार को अवगत कराया है कि सरकार ऐसे मामलों में एक वर्ष या छः माह का कठोर दण्ड दे। शायद मौलाना को यह ज्ञान अवश्य होगा कि सरकारी न्यायालय से औरत के लिए न्याय पात्र आसान नहीं है और इसमें अकारण तलाक के साथ कारण वाले तलाक भी लपेट में आ जायेंगे और सरकार को मुस्लिम पर्सनल लॉ में दखल देने की राह खुल जायेगी इसलिए मैं मौलाना के प्रस्ताव से सहमत नहीं हूँ।

मौ. मुहम्मद कासमी, हाजिक मौ. जफरुल-इस्लाम आजमी मौ. नूरुल कासमी ने तलाक की स्थिति में साहबैन के कथन को वरीयता दी है। मौ. हाजिक साहब और मौ. जफरुल इस्लाम साहब ने दूसरे निकाह के मामले में कोई राय नहीं दी है। मौ. मुहम्मद नूरुल कासमी ने दूसरे निकाह का उल्लेख नहीं किया है । यह समझा जाता है कि ये सज्जन दूसरे निकाह के लिए साहबैन के दृष्टिकोण से सहमत हैं। सात लोगों ने तलाक की स्थिति में साहबैन के कथन को वरीयता दी है और दूसरे विवाह की स्थिति में इमाम साहब के कथन को वरीयता दी है।

(1) मौ. अब्दुल कादिर क़ासमी (2) मौ. मुइनुद्दीन कासमी (3) मौ. मुहम्मद यूसुफ खाँ कासमी (4) मौ. अबू सुफियान (5) मौ. मुहम्मद रफीक बिन आदम (6) मौ. नईम अख्तर कासमी और (7) मौ. उबैदुल्लाह अल-असअदी साहब ने तलाक की स्थिति में साहबैन के कथन को आवश्यकता

पड़ने पर अपनाने की गुंजाइश को स्वीकार किया है परन्तु अभी उनको आवश्यकता महसूस नहीं हुई है।

मौलाना नईम अख्तर साहब ने दूसरा निकाह करने या न करने की स्थिति में महर को कम या अधिक करने को अनुचित बताया है। दोनों हालतों में महर मिस्ल को अनिवार्य बताया है अगर यह उनकी अपनी राय होती तो कोई बात नहीं थी लेकिन उन्होंनें इस कथन को अल्लामा नववी के हवाले से इमाम साहब की तरफ मन्सूब कर दिया है मगर जो हवाला उन्होंने दिया है उसका इस मसले से कोई सम्बन्ध नहीं है अगर मौलाना इमाम साहब के कथन के लिए हनफी उलमा और हनफी फिक्ह की किताबें देखते तो अच्छा होता।

इमाम साहब की राय में दोनों शर्तें अमान्य नहीं है मात्र वह शर्त अमान्य है जो अनिश्चित हो। इस स्थिति में निर्धारित महर के बजाये महर मिस्ल अनिवार्य होती है और शर्त पूरा करने की स्थिति में भी निर्धारित महर ही अनिवार्य होती है।

अट्ठाइस सज्जनों ने दोनों स्थिति में साहबैन की राय को अपनाया है। और 'रस्मुल-मुफ्ती' और 'शामी' के हवालों से साहबैन के कथन को अपनाने को उचित कहा है उनके नाम निम्नवत् हैं।

(1) मौ. खालिद सैफुल्लाह रहमानी (2) मौ. अतीक अहमद कासमी (3) मौ. हबीबुल्लाह कासमी (4) मौ. अख्तर इमाम आदिल (5) मौ. सनाउल-हुदा कासमी (6) मौलाना कुद्रतुल्लाह बाकवी (7) मौलाना अखलाकुर्रहमान अररियावी (8) मौ. वलीउल्लाह कासमी (9) मौ. फज्लुर्रहमान रशादी और (10) इन अक्षरों के लेखक अब्दुल जलील कासमी।

☆☆☆

प्रस्तुत समस्या

निकाह पूर्व तलाक का अधिकार सौंपना

मौलाना महफ़ूज़ुर्रहमान शाहीन जमाली

निकाह के समय या निकाह के बाद तलाक का अधिकार सौंपने की वैधता पर तमाम लेखकों ने सहमति जताई है लेकिन निकाह के पहले अधिकार सौंपने की वैधता में मैंने औरे मेरे राय के तीन समर्थकों ने दूसरे लेखकों की राय से मतभेद जाहिर किया है।

प्रस्तुत कर्ताओं के नाम और उनके तर्क और उनके उत्तर निम्नलिखित है:

(1) मौलाना खालिद सैफ़ुल्लाह साहब ने निकाह के पूर्व दोनों पक्षों के लिखित बयान के लिखवाने की वैधता पर खुलासतुल-फतावा की इबारत से दलील दी है।

''यदि पति यह कह दे कि मैंने तुम से निकाह किया और निकाह के बाद सारा अधिकार तुम को प्राप्त है और औरत ने उसे स्वीकार कर लिया तो वह मुख्तार (उसको अधिकार प्राप्त) हो गई। (खुलासतुल-फतावा भाग-2 पृ.-29)

जवाब:- इसमें सेगा मुतकल्लिम (First Person) का है अर्थात इससे यह पता चलता है कि यह निकाह के समय की बात है इसी लिए मुफ्ती मुहम्मद जैद साहब जामिया हथौड़ा वाले ने आलमगीरी किताबुल-हेयल भाग-6 पृ.-296ए के लेख की पंक्तियों (इबारतों) को निकाह के समय का ही माना है इनका लेख पृ-13 पर है।

नोट: अनुवादकों ने ऊर्दू संसकरण के पृष्ठ 13 पर उक्त हवाला देखा जो वहाँ मौजूद नहीं है।

(2) मौलाना अतीक साहब कासमी ने निकाह पूर्व तलाक का अधिकार सौंपने

की वैधता पर अहकामुश-शरीया-बि-अहवालिश-शख्सिया पृ. 326 की पंक्तियों: (अनुवाद)

''निकाह से पहले तलाक का अधिकार सौंपना ठीक है और निकाह के समय ठीक है और उसके बाद भी ठीक है यह हनफी दृष्टिकोण है इसलिए की उसमें अनिश्चितता है और तलाक में अनिश्चितता निकाह से पहले वैध है। इसी से उन्होंने अन्तिम दलील दिया है।

जवाब:- लेकिन अधिकार सौंपने को अनिश्चितता मानना कानून के विरुद्ध है। अधिकार सौंप देने का मतलब मालिक बना देना है और अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि इसमें अनिश्चितता का अर्थ भी है। पति को निकाह से पहले स्वयं तलाक देने का अधिकार नहीं है तो दूसरे को तलाक का अधिकार सौंपने का क्या अर्थ हो सकता है?

इसके अतिरिक्त चर्चा तलाक का अधिकार सौंपने की है तलाक की अनिश्चितता का नहीं है इसलिए इस दलीन का असली समस्या से सम्बन्ध नहीं है।

(3) विद्वान लेखकों ने निकाह से पहले तलाक का अधिकार सौंपने की वैधता पर हजरत थानवी (रह.) के लेख (रिसाला) 'अल-हीलतुल नाज़िजा' के हवाले से दलील दी है और हजरत थानवी की दलील निम्नवत् हैं:

"لما فی تنویر الابصار باب التعلیق و شرطۂ الملک اوالاضافة کان نکهتک فانت طالق وفی العالمگیریة الفصل الثالث من کتاب الشروط والثانی تعلیق التفویض بالشرط"

जवाब:- लेकिन इस हवाले में ''इन नकहतुका'' (यदि मैंने तुम से निकाह किया) में निकाह की मिल्कियत को निकाह के वक्त का जाहिर हो रहा है। दूसरी विचार करने वाली बात यह है कि तलाक निकाह की मिल्कियत पर आधारित है न कि तलाक का अधिकर सौंपना। इसलिए निकाह से पहले तलाक की वैधता पर फुकहा ने कोई साफ लेख प्रस्तुत नहीं किया है।

(अ) तलाक का अधिकार सौंपने के विषय में फिक्ह की किताबों में जो लेख हैं वह निकाह के बाद ही अधिकार सौंपने से सम्बन्धित हैं।

(ब) मुल्ला अली कारी जो हिदाया के लेखक है और इब्नुल-हमाम ने तलाक का अधिकार सौंपने को 'दलीले कयास' के विरुद्ध 'दलीले इस्तेहसान' से साबित मानकर सहाबा के जिन आसार (Heritage) से दलील लिया है वह सब तलाक अधिकार सौंपने की समस्या को निकाह के समय या निकाह के बाद की वैधता (तलाक का अधिकार) की दलील देते हैं।

(स) बुखारी शरीफ में 'आयत-ए-तख्ईर' के सिलसिले में नबी (सल.) ने हजरत आयशा (रजि.) से इरशाद फरमाया ''मैं तुम्हें कुछ बात बताऊँगा और तुम जल्दी मत करो जब तक कि तुम अपने वालिदैन से इजाजतन ले लो'' अगर अधिकार सौंपने का मतलब तलाक हो तब भी इस घटना का निकाह के बाद ही घटित होना लगता है।

(द) तख्ईर की आयत जिसके कई अर्थ हैं इसका नुजूल (अवतरण) हुजूर (सल.) की पवित्र पत्नियों के निकाह में आ जाने के बाद हुआ है।

इस तरह कुरआन व हदीस और सहाबा की धरोहर (Heritage) में निकाह से पूर्व तलाक का अधिकार सौंपने का कोई उदाहरण मौजूद नहीं है। एक बात यह बाकी रह जाती है कि निकाह के बाद तलाक का स्वामी (मालिक) होने के कारण जो अधिकार मिला उसे सौंपने में क्या बुराई है जब कि फुकहा ने तलाक और आजादी को दूसरे मसलों में इस्तेमाल किया है तो इसका जवाब यह है कि 'हदीस-ए-मरफूआ' में आया है ''आदमी उस चीज को दान नहीं कर सकता जिसका वह मालिक नहीं है और उसको आजाद नहीं कर सकता जिसका वह मालिक नहीं है और तलाक नहीं दे सकता जिसका वह मालिक नहीं है। (तिर्मिज़ी-अध्याय-ला-तलाका कब्लन्निकाह)

और दूसरे अध्याय में अली और मुआज और जाबिर इब्ने अब्बास और आयशा से रिवायत है।

अब्दुल्लाह इब्ने उमर की हदीस है और यह हसन सहीह है और इस

अध्याय में जो रिवायत की गई है बहुत अच्छी चीज है और यह कथन नबी (सल्ल.) के सहाबा से है जो बड़े ज्ञान वाले और विद्वान थे। और कारी ने फरमाया 'यह शाफई का मसलक (दृष्टिकोण) है और इसी बात को इमाम अहमद ने कहा है (मिरकात-भाग-2 पृ.-582)

उपरोक्त हदीस का मतलब निकाह से पहले तलाक की कोई वैधता नहीं है और प्रस्ताव कर्ताओं के अनुसार तलाक का अधिकार सौंपने में भी यही लागू होना चाहिए इसके विपरीत स्वामित्व (मिल्कियत) के सुबूत पर कुछ सहाबा और ताबईन (सहाबा के बाद की पीढ़ी) की धरोहर में सहीह हदीस नहीं है। फिर इन धरोहरों के विपरीत इब्ने हजर ने अधिकांश विद्वानों का दृष्टिकोण (मसलक) नकल किया है और इमाम बुखारी ने 'निकाह से पहले तलाक नहीं है' जिसकी पुष्टि में 23 सहाबा और ताबईन के नाम गिनाये है। अल्लामा किरमानी ने इस दृष्टिकोण को लगभीग सर्व सम्मत करार दिया है। इन 23 फुकहा और विद्वानों की जमात के कहने का तात्पर्य यह है कि निकाह से पहले तलाक नहीं है लगभग इस पर सर्व सम्मति है। (हाशिया बुख़ारी)

स्वयं हनफी उलमा की दृष्टि में 'इसी हदीस के अन्तर्गत, आदमी जिस चीज का मालिक न हो उसे दान नहीं कर सकता' में अतिरिक्त मिल्कियत (स्वामित्व) का ऐतेबार नहीं है।

मुल्ला अली कारी इसकी व्याख्या में लिखते हैं ''यह सही नहीं है यदि यह कहा जाये कि अल्लाह के लिए मैंने इस गुलाम को आजाद कर दिया और वह उसका मालिक नहीं था। इसी तरह दान भी ठीक नहीं होगा। तो अगर बाद में उसका मालिक हो गया तो उसको आजाद नहीं किया । ऐसे ही हमारे कुछ विद्वानों ने उल्लेख किया है:- (मिरकातुल-मफातीह भाग-6, पृ.385)

तो फिर तलाक का अधिकार निकाह से पहले सौंपने में निकाह से सम्बन्ध पर क्यों ऐतेबार किया जाये?

(इ) मेरे विचार में तलाक और उसका अधिकार सौंपना दोनों में स्पष्ट अन्तर है आदेश की समानता में रुकावट है। इसलिए कि तलाक का अधिकार कुरआन में अल्लाह तआला ने मात्र पति को दिया है ''जिसके

अधिकार में निकाह का बन्धन है'' (सूर:बकरा:237) औरत को तलाक देने का अधिकार अल्लाह को स्वीकार नहीं है अन्यथा वह इस तरह का अधिकार औरत को स्वयं देता। ऐसी स्थिति में पति का पत्नी को यह अधिकार दे देना कुरआन पाक के मूल वाक्यों के विरुद्ध है। और जिसका अधिकार अल्लाह की ओर से अधिकार सौंपने का हक न मिलने के कारण इस अधिकार में कोई मजबूती नहीं है और पति को तलाक देने का एक जोर दार (सशक्त) हक है और जोरदार और करजोर एक जैसे नहीं हो सकते।

(फ) इस मसले में दो विद्वान लेखक मौलाना श्हबाज़ आलम नदवी और इसरारुल-हक साहब फाजिल (पूर्व छात्र) सबीलु-सस्लाम हैदराबाद, जिनका दृष्टिकोण मेरे दृष्टिकोण से पूरी तरह मिलता है, इन दोनों ने निकाह से पहले तलाक का अधिकार सौंपने की अवैधता पर अब्दुर्रहमान जज़ीरी की इन पंक्तियों से दलील दी है।

''अगर निकाह से पहले शर्त लगाई जाये तो उस शर्त पर अमल नहीं होगा (शर्त लागू नहीं होगी)'' (अल-फिक्ह अलल-मजाहिबिल अरबाअ भाग-4, पृ.-89)

(ज) मौलाना उबैदुल्लाह असअदी ने तलाक का अधिकार सौंपने को कुरआन व हदीस और शरीअत के विरुद्ध बताया है। और इस मसले को मुतकद्दिमीन (पूर्व फुकहा) ने ऐसा मसला करार दिया है जिसका कोई खास महत्व नहीं है। इसको सार्वजनिक नियम नहीं बनाया जा सकता। इस सिलसिले में कोई लिखित बयान दर्ज करने को भी मना किया है जिससे मेरे दृष्टिकोण की पुष्टि एक सीमा तक हो जाती है।

(झ) तलाक का अधिकार सौंपने का उद्देश्य औरत को पति के अत्याचार से बचाना है और पति के अत्याचार का अनुमान उसके व्यक्तित्व उसकी आदत उसकी चाल-चलन, उसके सोंच का रूझान और उसकी मानसिकता का अध्ययन करने और जाँच पड़ताल के बाद उससे क्या हानि और लाभ होगा उसका अनुमान लगाया जा सकता है बल्कि निकाह से पहले हानि का खतरा मात्र कल्पना है लेकिन निकाह से

पहले अत्याचारी कहना, उस पर कुछ लिखवाना या शपथ लेना मात्र बद गुमानी है जिसकी कोई वैधता नहीं है और निकाह से पहले अधिकार सौंपने का कोई औचित्य नहीं है।

लेकिन निकाह के समय तलाक का अधिकार सौंपने का मामला वैध हो सकता है (हालाँकि यह भी निकाह के मालिक होने से पहले है) जिसका आधार यह है कि अधिकार सौंपने का निकाह के स्वामित्व से निकटता है और निकाह कायम हो जाने के साथ साथ पाई जा रही है और निकाह से पहले अधिकार सौंपने का मामला ऐसा है कि निकाह का स्वामित्व और अधिकार सौंपने में दूरी है और निकाह के स्वामित्व का प्राप्त होना अधिकार सौंपने के समय काल्पनिक आशा है और हकीकत से दूर है इसलिए दोनों हालतें एक जौसी नहीं है। अगर स्वामित्व की हकीकत निकट है तो उस पर भरोसा किया जा सकता है और जिसमें मात्र कल्पना हो उस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है।

☆☆☆

कुछ महत्वपूर्ण लेख

निकाह में शर्त, तलाक का अधिकार सौंपना, शर्त लगाई गई महर

मौ. ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

जब हम यह कहते हैं कि इस्लाम का परिवारिक कानून जितना सन्तुलित और मानव प्रकृति के अनुकूल और सामाजिक आवश्यकताओं की कसौटी पर खरा और पूर्ण है, वह स्वयं इस्लाम का चमत्कार और उसके सच होने की खुली दलील है और इस बात का सबूत है कि इसका स्रोत सृष्टि के अधूरे ज्ञान पर आधारित नहीं है बल्कि दुनिया के रचयिता और उसके पालनहार का दिया हुआ उपहार है जो मानवता की आवश्यकताओं और उनकी भलाई बुराई से उसके मुकाबले अधिक बा-खबर है, तो हमारा यह निरा दावा नहीं है।

वास्तविकता यह है कि पूरब से लेकर पच्छिम तक न कोई धर्म न धार्मिक गिरोह न कोई मानवकृत कानून है जिसने इस्लाम के सामाजिक कानून से लाभ न उठाया हो। एक सामाजिक आवश्यकता मानते हुए मजबूरी में तलाक की गुन्जाइश, विरासत की वयवस्था में औरत को बाप की सम्पत्ति में मालिकाना अधिकार और तलाक के बाद और विधवा औरतों के लिए दूसरे निकाह की अनुमति और इस तरह कई ऐसी समस्यायें हैं जिनकी आवश्यकता को मानवकृत विधानों में जगह दी गई है। इस तरह की व्यवस्थाएं इस्लामी सामाजिक कानून की देन हैं।

परन्तु अफसोस है कि भारत की मौजूदा परिस्थितियों में शरीअत के कानून से दूरी और अनभिज्ञता और दूसरी कौमों के रस्म रिवाज के प्रभाव जो इस्लामी शिक्षाओं और इन्साफ के आम तकाजों के विरुद्ध है और शरीअत के कुछ अधिकारों दुरुपयोग और अल्लाह से न डरने के कारण लोगों को इस्लामी शरीअत

के विरुद्ध बोलने का अवसर मिला जिन को मुसलमानों की धार्मिक, सांस्कृतिक पहिचान बिलकुल गवारा नहीं है और उलमा के लिए यह बात चिन्ता का कारण बन गई और वह इस बात को सोचने लगे कि इस्लामी दायरे में रहते हुए इसके दुरुपयोग से लोगों को रोका जाये। निकाह के साथ दूसरी शर्तों को जोड़ने के मसले पर विचार करना चाहिए।

प्रश्न–उत्तर-1

निकाह में लगाई जाने वाली शर्तें बुनियादी तौर पर तीन तरह की हैं:

पहली क़िस्म:

ऐसी शर्तें जो उन्हीं अधिकार और कर्त्तव्य पर जोर डालती हैं जिनको शरीअत ने निकाह के कारण अनिवार्य करार दिया है जैसे पति का पत्नी को जीविका देना, उसके साथ शरीअत के कानून के अनुसार भले तरीके से जीवन व्यतीत करना, पत्नी का हर अच्छे काम में पति की बात को मानना और उसकी नाफरमानी न करना। पति की अनुमति के बिना घर से बाहर न जाना।

ऐसी शर्तें सर्वसम्मति से वैध हैं और दोनों पक्षों पर उनका पालन करना अनिवार्य है इसलिए कि यह स्वयं निकाह के उद्देश्य में से हैं, और शरीअत ने इनको अनिवार्य करार दिया है। निकाह के समय शर्त के तौर पर उनका बयान करना, केवल शरीअत के कानून पर अमल करना और अपने अपने अधिकार और कर्त्तव्य पालन करने के वादे का नवीनीकरण और प्रमाणीकरण (Authenticaton) है (फतहुल-बारी, भाग-9, 217)

दूसरी क़िस्म:

ऐसी शर्तें जो निकाह से सम्बन्धित हों और शरीअत के कानून के विपरीत हों, हाफिज इब्ने रुश्द के शब्दों में जो निकाह के सही होने की शर्तों में से किसी शर्त को खारिज कर देती हों या निकाह के अनिवार्य आदेश में से किसी आदेश में परिवर्तन करती हों। (बिदायतुल-मुज्तहिद, भाग-2, पृ.-59)

जैसे यह शर्त कि पत्नी का महर नहीं होगा या पति उसको जीविका नहीं

देगा या औरत की तरफ से यह शर्त कि पति उससे करीब नहीं होगा या सौत के हिस्से में से अतिरिक्त उसे देगा। इसके अतिरिक्त यह शर्त भी कि पति औरत और उसके परिवार से किसी धन की माँग नहीं करेगा। (अल-मुग्नी-भाग-7, पृ.-72)

ऐसी शर्तें सर्व सम्मति से भरोसे के योग्य नहीं है। इमाम बुखारी (रह.) ने ऐसी शर्तों के मना करने पर एक स्थायी अध्याय स्थापित किया है: 'उन शर्तों का बयान जो निकाह में हलाल नहीं हैं' (बुख़ारी अल-फतह के साथ-भाग-9, पृ.-219)

फिर इस पर अब्दुल्ला इब्ने मसूद का कथन प्रस्तुत किया है, ''कोई महिला अपनी दीनी बहन अर्थात सौत को तलाक देने की शर्त न लगाये'' इसके पश्चात अबू हुरैरह की रिवायत का उल्लेख किया है कि नबी (सल्ल.) ने फरमाया कि औरत के लिए जायज़ नहीं है कि अपनी सौत के तलाक की माँग करे ताकि उसका हिस्सा भी उसे मिल जाये क्योंकि जितना उसके भाग्य में है वह मिल कर ही रहेगा। (पूर्व वत् पृष्ठ)

अगर इस तरह की शर्तें लगा दी जायें तो इस पर सर्वसाम्मति है कि निकाह पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, निकाह हो जायेगा और शर्तें बेकार और अप्रभावी होंगी। (बिदायतुल-मुज्तहिद भाग-2, पृ. 59) (फतहुल बरी-भाग-9, पृ.812)

तीसरी क़िस्म:

तीसरी किस्म की वह शर्तें हैं जिनसे महिला को लाभ पहुँचता हो और शरीअत ने न उनको अनिवार्य करार दिया हो न उनसे रोका हो, मानो, इन शर्तों को स्वीकार करके मर्द अपने कुछ ऐसे अधिकारों को छोड़ देता है जिन्हें उसको छोड़ देने का अधिकार है; जैसे औरत का यह शर्त लगाना कि उसको मैके में रखेगा या उसको शहर से बाहर नहीं ले जायेगा आदि। (अल-मुग्नी-भाग-7 पृ.-71)

ऐसी शर्तों के साथ निकाह किया जाये तो निकाह हो जायेगा इस पर सर्वसम्मति है लेकिन मतभेद इस बात पर है कि यह शर्तें वैध होंगी और उनका

पूरा करना अनिवार्य होगा अथवा नहीं? नेक पूर्वजों और इमामों व मुज्तहिदों (Juristis) में से इसके पक्ष और विपक्ष में बड़ी संख्या में रायें हैं।

विपक्ष की दलीलें:

जो लोग ऐसी शर्तों को अवैध मानते हैं उनमें सहाबा, हजरत अली (रजि.) का नाम अग्रणी है। (मुन्सिफ़ इब्ने अबी शैबा, भाग-2, पृ.-200)

इसके अतिरिक्त यही राय सईद बिन मुसय्यिब, हसन बसरी, शाबी, ताऊस, (इन सभों ने अबू शैबा से नकल किया है-मुन्सिफ, भाग-2 पृ. 200, जिसने कहा उसकी कोई शर्त नहीं.....) इब्राहीम नख़ई, इब्ने शहाब जहरी अता, अयास इब्ने मआविया, (मुन्सिफ, अब्दुर्रज्जाक, भाग-6, पृ.-230) इब्ने सीरीन और सुफियान सौरी (शरहुस्सुन्ना-लिल-बग्वी, भाग-9, पृ.-55) की है, चारो इमामों में इमाम अबू हनीफा, इमाम मालिक (बिदायतुल-मुज्तहिद, भाग-2, पृ.-59) और इमाम शाफई (शरई मुहज्जब, भाग-16, पृ. 250) का दृष्टिकोण भी यही है। मालिकी फोक्हा ऐसी शर्तों को घृणित बताते हैं और कहते हैं कि मर्द के लिए इनका पूरा करना अनिवार्य तो नहीं है, लेकिन मुस्तहब (पसंदीदा) है। (हाशिया सावी अला-शरहुस्सगीर भाग-2, पृ.-385)

इन सज्जनों के तर्क निम्नलिखित हैं:

(1) नबी (सल्ल.) ने फरमाया जो शर्त अल्लाह की किताब में नहीं है वह बातिल या अवैध है। (बुखारी, भाग-1, पृ.-377)

और स्पष्ट है कि निकाह के लिए ऐसी शर्तें अल्लाह की किताब में नहीं हैं।

(2) इरशाद नबवी है: मुसलमानों के कर्त्तव्य व अधिकार निर्धारित शर्तों के अनुसार होंगे मगर वह शर्त जो हलाल को हराम बना दे और हराम को हलाल बना दे। ऐसी शर्तें अमान्य हैं। पति को जब शरीअत ने दूसरे निकाह की अनुमति दी है और जहाँ रहे वहाँ पत्नी को रखने की भी अनुमति दी है तो अब किसी शर्त के माध्यम से मर्द का इस अधिकार से वंचित हो जाना हलाल को हराम कर देने जैसा है।

(3) ऐसी शर्तें निकाह की आवश्यकताओं के विपरीत हैं (शरह मुहज्जब, भाग-16, पृ.-250) (फिक्ह अस्सुन्ना, भाग-2 पृ.-52)

(4) एक महिला जिसे पति ने मकान देने का वादा किया था जब इसके बारे में हज़रत अली (रजि.) से पूछा गया तो आपने फरमाया अल्लाह की शर्त पत्नी के शर्त के ऊपर है (मुसन्निफ इब्ने शैबा भाग-2, पृ.-20)

पक्षकारों की दलीलें:

जिन सज्जनों की दृष्टि में ऐसी शर्तें वैध हैं और पति पर उनका पूरा करना अनिवार्य है उनकी सूची लम्बी हैं सहाबा में हजरत उमर (रजि.) (मुसन्निफ अब्दुर्रज्जाक, भाग-6, पृ.-227)

उमर इब्नुल-आस (मुसन्निफ अब्दुर्रज्जाक, भाग-6, पृ.228) का यही दृष्टिकोण था) बाद के विद्वानों में काजी शुरैह, अबू शाशा, (पूर्ववत्) भाग-6 पृ.-224) और उसके बाद बाबुश्शुरूत फिन निकाह) हजरत उमर इब्ने अब्दुल अजीज (मुसन्निफ इब्ने अबी शैबा भाग-2, पृ.200) इसहाक, तिर्मिजी (भाग-1, पृ.214), बाबुश्शर्त इन्द-अन्ननिकाह) औजाई, इब्ने, शबरमा, (बिदायतुल मुज्तहिद भाग-2, पृ.59) का भी यही कथन है। अल्लाह बग्वी ने हजरत अब्दुल्लाह इब्ने मसूद से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा है (शरह-अस-सुन्ना भाग-9, पृ.-59)। अधिकतर हदीस के विद्वानों का झुकाव भी इसी तरफ मालूम होता है। इमाम बुखारी ने अपने तर्जुमतुल बाब में हजरत उमर (रजि.) के कथन का एक टुकड़ा नकल किया है जो इस किस्म की शर्तों के वैध होने से सम्बन्धित है (बुखारी बाब-अश्शुरूत फिन-निकाह)। इससे स्पष्ट है कि वह इसी गिरोह के साथ हैं और यही विचार इमाम अबू दाऊद का है, (अबू दाऊद, मअ-औनिल माबूद बाब फी रजुल यश्तरितु लहा दारन् भाग-6, पृ.-176) इज्तेहाद के इमामों में इमाम अहमद इब्ने हम्बल की भी यही राय है (अल मुग्नी, भाग-7 पृ. 71)

इन सज्जनों की दलीलें इस प्रकार हैं:

(1) ''अल्लाह का आदेश ''ऐ इमान वालो वचन को पूरा करो'' अबू बक़र जसास राज़ी ने इस आयत के अन्तर्गत हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास,

मुजाहिद, इब्ने जरीह, अबू उबैदा और अन्य कई लोगों से नकल किया है कि उकूद (बचानों) का अर्थ वादे यानी समझौते हैं (अहकामुल कुरआन भाग-3, पृ.-283-84) इससे स्पष्ट है, निकाह के समय निर्धारित की गई शर्तें वैध हैं और समझौतों में से हैं। स्वयं जसास ने भविष्य में किए जाने वाले कामों के लिए मनुष्य जो शर्त अपने ऊपर लागू करे वह समझौता है (अहकामुल कुरआन भाग-3, पृ.-285)

फिर आगे वह इस बात पर चर्चा करते हुए यह बताते हैं कि आयत का उद्देश्य क्या है? वह कहते हैं इन्सान अपने आप पर जो शर्तें लागू कर ले यह आयत उन शर्तों को पूरा करने को अनिवार्य करार देती है, सिवाय इसके कि कोई ऐसी दलील मौजूद हो जो विशेष किस्म की शर्तों पर जोर डालती हो। (अहकामुल कुरआन, भाग-3, पृ.-286)

और इसी किस्म की बात कुरआन में दूसरी जगह भी आई है अल्लाह से किए गये वचनों को पूरा करे'' (सूरः नहल-91)

कुरआन के टीकाकार कर्तबी लिखते हैं अह्द (वचन) एक आम शब्द है जो जबान से तय किया जाये और जिसे इन्सान अपने ऊपर अनिवार्य कर ले। क्रय-विक्रय हो या रिश्तों का सम्बन्ध हो या कोई ऐसा मामला हो जो दीन के अनुकूल हो।

(2) हजरत अक्बा बिन आमिर से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने फरमाया कि सबसे अधिक पूरा करने के योग्य वह शर्तें हैं जिनके द्वारा तुम औरतों को हलाल करते हो। (बुखारी-फतहुलबारी, भाग-9, पृ.-217)

आमतौर पर हदीस के विद्वानों ने इसी किस्म की शर्तें समझा है। 'बुखारी, अबू दाऊद का दृष्टिकोण पहले आ चुका है) इब्ने अबी शैबा ने पहले वह रिवायतें और सहाबा की धरोहर नकल किये है जिनसे इन शर्तों का वैध होना सिद्ध है और सबसे पहले हजरत उमर (रजि.) का यह कथन बयान किया है, फिर उनका भी उल्लेख किया है जो इन शर्तों को अवैध मानते हैं और प्रारम्भ हजरत अली के कथन से किया है---ओर हजरत अक्बा बिन आमिर की रिवायत को पहले गिरोह के साथ उल्लेख किया है। (मुसन्निफ, भाग-4,

पृ.-199-200)

अब्दुर्रहमान बिन गनम कहते हैं कि मैं हजरत उमर (रजि.) की सेवा में हाजिर था। हजरत उमर (रजि.) के पास एक मामला आया जिसमें पति पत्नी के बीच शर्त तय थी कि पति उसको उसके मैके में ही रखेगा। हजरत उमर ने फरमाया कि यह शर्त पूरी की जाये। उसके पति ने कहा कि अगर इस तरह का फैसला हो तो औरत जब भी पति से अलग होना चाहेगी अलग हो जायेगी। हजरत उमर ने फरमाया:

''मुसलमान लोग कोई शर्त लगाते हैं तो उन पर अनिवार्य हो जाता है'' (मुसन्निफ अब्दुर्रज्जाक भाग-2, पृ.-227)

इब्ने अबी शैबा ने इसको संक्षेप में (मुसन्निफ भाग-2 पृ.-200) और बुखारी ने टिप्पणी के लिए (तालीकन्) उद्घृत किया है (बुखारी मअ फतहुल बारी भाग-9, पृ.-217)

(4) यही मत विभिन्न सहाबा अर्थात उमर (रजि.) के अतितिक्त साद बिन अबी वक्कास, मआविया और उमर इब्ने आस की भी है (अल-मुग्नी भाग-7, पृ.71) इसके अलावा हजरत उमर का फैसला उस वक्त हुआ था जबकि सहाबा की बड़ी संख्या मदीना में बस रही थी और इस फैसले में कोई मतभेद कहीं से नहीं नकल किया गया है।

(5) यह ऐसी शर्तें हैं जो निकाह के उद्देश्य में बाधक तो नहीं हैं लेकिन एक जायज़ उद्देश्य और लाभ जुड़ा हुआ है। जैसे महर की अधिकता या अपने देश की मुद्रा में महर निर्धारित किया गया तो उन्हीं मामलों की तरह इन शर्तों को भी अनिवार्य होना चाहिए। (पूर्ववत्)

दोनों पक्षों की दलीलों पर एक दृष्टि:

जब कि दोनों पक्ष अपनी अपनी दृष्टि पर भिन्न- भिन्न दलीलें प्रस्तुत करते हैं लेकिन दोनों पक्षों की असली दलील नबी (सल्ल.) की हदीसें हैं। तीनों इमामों ने इस हदीस के साधारण अर्थ को ध्यान में रखा है:

''जो शर्त अल्लाह की किताब में न हो उसका कोई महत्व नहीं'' (बुखारी

भाग-1, पृ.-65)

और हम्बली उलमा ने निकाह से सम्बन्धित इस विशेष आदेश को ध्यान में रखा है ''सब से अधिक वह शर्त पूरा करने योग्य है जिसके माध्यम से तुम इस्मत (सतीत्व) को हलाल करते हो''

हाफिज इब्ने रुश्द ऊँचे स्तर के मालिकी फुकहा में से हैं और न्यायवादी भी हैं मगर उनका झुकाव इमाम हम्बल की तरफ है ''दोनों हदीसें सहीह हैं जो बुखारी व मुस्लिम में हैं लेकिन उसूले हदीस के उलमा के यहाँ यह बात मशहूर है कि खास (विशेष) के माध्यम से आम (साधारण) का विशिष्ट किया जायेगा, और जिस मामले पर चर्चा चल रही है उस की विशेषता यही है कि शर्त का पूरा करना अनिवार्य हो।'' ''अतीबा'' (मालिकी फिक्ह की एक अहम किताब है) में जो कहा गया है उससे भी यही स्पष्ट है। यद्यपि प्रसिद्ध कथन इसके विपरीत हैं।

मौजूदा दौर के शोधकर्ता उलमा में विभिन्न लोग हैं जो इस मामले में इमाम हम्बल के दृष्टिकोण के समर्थक हैं इनमें शेख मुस्तफा अल जरक़ा (अल मदखलुल फिक्ही अल आम भाग-1, पृ.-422, शेख सैयद साबिक फिक्हुस्सुन्ना और डा. वहबा जुहैली अल-फिक्हुल-इस्लामी व अदिल्लतहू भाग-77, पृ. 60) खासतौर से उल्लेखनीय हैं। सीरिया के मौजूदा पारिवारिक कानून में भी इसी पर अमल हो रहा है और याद आता है कि 1975 में मिस्र की संसद ने भी अज़हर के विद्वानों के समर्थन से इस प्रकार कानून बनाया था जो उस समय भारत में अखबारों का विषय बन गया था।

वास्तविकता यह है कि शर्त और समझौता के मामले में इस्लाम में साधारण सोच और रूझान विशेषत: निकाह के बारे में निर्धारित शर्तों का पूरा करना और हजरत उमर (रजि.) के खलीफा की हैसियत से प्रतिबन्ध के लिए आदेश देना और स्पष्ट रूप से सहाबा का विरोध न करना और इसी किस्म का काजी शुरैह का निर्णय और विभिन सहाबा का इस मत से सहमत होना, ये मामले हैं जिनसे हम्बली उलमा का दृष्टिकोण अधिक प्रबल प्रतीत होता है। हदीस में निर्धारित शर्तों को पूरा करने का जो आदेश दिया गया है अधिकतम उलमा का विचार है

कि इससे कोई अतिरिक्त शर्त का तात्पर्य नहीं है। बल्कि निकाह के आधार पर होने वाले कर्त्तव्य व अधिकार पर बल देना है। लेकिन हदीस के शब्दों में ज़ाहिरी तौर पर कोई ऐसा तर्क नहीं और न हदीस की किताबों में न कोई ऐसी पृष्ठभूमि नकल की गई है जिसके कारण यह अर्थ लिया जा सके। लेकिन तीनों इमामों के अनुयायियों में से जिन लोगों ने सरसरी तौर पर हदीस पर विचार किया है उन्होंने हम्बली उलमा के दृष्टिकोण को इस हदीस से अधिक निकट पाया है। इब्ने रूश्द का स्पष्टीकरण ऊपर आ चुका है। शाफई उलमा में इब्ने दकीकुल ईद का जो स्थान है उसे हदीस व फिक्ह के लोगों में कौन नहीं जानता। उन्होंने अधिकांश फकीहों की ओर से हदीस के इस स्पष्टीकरण पर असन्तोष व्यक्त किया है जैसा कि हाफिज इब्ने हजर कहते है:

''जो शर्तें स्वयं ही निकाह के लिए आवश्यक हैं उन्हीं को इस हदीस से अनुमोदन (مصداق) करने पर 'इब्ने दकीकुल ईद' को सन्देह है। वह कहते हैं कि जब इन बातों को अनिवार्य ठहराने में इन शर्तों को लगाना कारगर नहीं है तो फिर उन शर्तों को लगाने और उससे सम्बन्धित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दहीस का संदर्भ भी इसके विपरीत है क्योंकि ''अदा करने की अधिक हकदार शर्तों'' की व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि कुछ शर्तें पूरा करने योग्य हैं और कुछ अधिक पूरा करने की हकदार हैं, और जो शर्तें निकाह में अनिवार्य हैं उनको पूरा करने की अनिवार्यता बराबर है (फतहुल-बारी भाग-9, पृ.-218)

''अल्लाह की किताब में जो शर्त न हो वह गलत है'' इसका तात्पर्य कैसी शर्तों से है? इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है जिसकी पृष्ठभूमि में हजरत मुहम्मद (सल्ल.) का उक्त इरशाद है। घटना यह है। हजरत बरैरा नाम की एक बाँदी हजरत आयशा (रजि.) के पास पहुँची तो उनके स्वामियों ने उनको मकातीब (इसका तात्पर्य ऐसा दास या दासी है जिससे मालिक ने कह दिया हो कि तुम अमुक धन भुगतान कर दो तो तुम आजाद हो जाओगे/जाओगी तो आजाद किये हुए दास/दासी पर अभिभावकत्व का अधिकार प्राप्त होता है इसके कारण कुछ स्थितियों में एक दूसरे से विरासत मिलेगी) बना दिया था। उन्होंने मोमिनों की माँ हजरत आयशा से निवेदन किया कि उनको इस धन की

अदायगी में मदद दी जाये। हजरत आयशा (रजि.) ने कहा कि इसके बजाए मैं चाहुँगी कि तुमको तुम्हारे स्वामियों से खरीद लूँ और स्वयं आजाद कर लूँ इस तरह तुम्हारी विरासत मुझे हासिल हो, स्वामियों ने कहा, हम बेच तो दें और मोमिनों की माँ आजाद कर लें परन्तु विरासत का हक हमारे लिए सुरक्षित रहेगा। स्पष्ट है इनकी यह बात शरीअत की रूह (आत्मा) के विपरीत थी। शरीअत में 'नसब (नस्ल)' की तरह अभिभावकत्व का भी एक प्राकृतिक सम्बन्ध है और इससे मिलने वाला अधिकार परिवर्तन योग्य नहीं है जैसे जैद का बेटा समझौते के माध्यम से अम्र का बेटा नहीं बन सकता। इसी तरह जिसको जैद ने आजाद किया वह किसी शर्त के आधार पर अम्र का अभिभावक नहीं बन सकता।

इनके इस विवेकहीन शर्त और माँग पर नबी (सल्ल.) ने नाराजगी ज़ाहिर की और मस्जिद के मिम्बर से फरमाया:

''कुछ लोगों का क्या हाल है जो ऐसी शर्तें लगाते हैं जो अल्लाह की किताब में नहीं हैं जो व्यक्ति ऐसी शर्त लगाए जो अल्लाह की किताब में मौजूद न हो उसका कोई महत्व नहीं चाहे वह सौ की संख्या में हों।'' (बुखारी भाग-1, पृ.-65 अध्याय, क्रय-विक्रय)

इस घटना की पृष्ठिभूमि से स्पष्ट है कि ''अल्लाह की किताब में नही है'' से ऐसी शर्त मुराद (तात्पर्य) है जो शरीअत की रूह से और इस मामले की रूह और उद्देश्य और मौलिक रूझान से हटा हुआ है। जैसे पति और पत्नी में किसी एक की ओर से शारीरिक सम्बन्ध से मना करने की शर्त, पति की तरफ से जीविका न देने की शर्त, यह सब निकाह के मौलिक कर्त्तव्य में से हैं और एक निकाह के बाद दूसरा निकाह और औरत के निवास स्थान का प्रश्न निकाह के आवश्यकताओं में से नहीं है।

ऐसी शर्तों को 'हलाल को हराम' कर देने के अर्थ में लेना भी कठिन है। हलाल से भी ऐसी चीजें मुराद हैं जो निकाह की आवश्यकता में से हों जैसे शारीरिक सम्बन्ध का अधिकार पति पत्नी दोनों को हलाल है। दूसरे पक्ष की माँग के बिना अनिवार्य नहीं है। यही हाल औरत की जीविका का भी है। शेष वह अधिकार जो मामले में अनिवार्य न बनाये गये हों और हलाल हों उनमें किसी पर

कोई पक्ष समझौते से अपने अधिकार को छोड़ दे तो उसे हलाल को हराम कर देना नहीं कहा जायेगा। सोचने की बात यह है कि तलाक, सिद्धान्त रूप से मर्द का अधिकार है और वह इस अधिकार का स्वयं प्रयोग कर सकता है। औरत स्वयं अलग होने का फैसला नहीं कर सकती है लेकिन फुकहा ने तलाक का अधिकार सौंपने की स्थिति में उसको अवसर दिया है कि वह अपने अधिकार का कुछ भाग पत्नी को स्थानान्तरित कर दे।

''तहरीम-ए-हलाल (हलाल को हराम करना)'' के इस भावार्थ को इस पृष्ठिभूमि में भी देखा जा सकता है कि हज़रत उमर (रजि.) ने निकाह में इस तरह की शर्तों को जायज़ और उनको पूरा करना अनिवार्य करार दिया है और हजरत उमर (रजि.) ने ही इस्लाम में न्याय के विधान (क़ानून-ए-अद्ल) के सिलसिले में अबू मूसा अशअरी के नाम चिट्ठी लिखी थी।

''मुसलमानों के बीच सुलह कराना जायज है सिवाय ऐसी सुलह के जो किसी हराम को हलाल या हलाल को हराम करने का कारण बने'' (अबू दाऊद, तिर्मिजी, इब्ने माजा, नसबुर्राया-भाग-2, पृ.-112)

इससे यह स्पष्ट है कि हजरत उमर (रजि.) इस बात से न तो बे-ख़बर थे और न गाफिल, कि जो सुलह और समझौता हलाल को हराम कर दे और हराम को हलाल कर दे वह जायज नहीं और वह इस तरह की शर्तों को तहरीम-ए-हलाल जैसा नहीं मानते थे।

वास्तविकता यह है कि इस प्रकार की शर्तों का उद्देश्य मामले में कमजोर पक्ष का अपने लिए सुरक्षा प्राप्त करना है। क्रय-विक्रय के मामले में 'रेहन' और किफालत (संरक्षा) की व्यवस्था है। इब्ने कोदामा के कथनानुसार यह भी इसी प्रकार की शर्तों में है। (अल-मुग्नी, भाग-7, पृ.-71)

मामलात वास्तव में समझौतों पर आधारित होते हैं और दोनों पक्षों पर उसका निर्वाह करना आवश्यक है सिवाय इसके कि शरीअत के किसी आदेश के विपरीत है। इस्लामी शरीअत के तथ्यों को जानने वाले इमाम इब्ने तैमिया का कथन है, ''मामलात में वास्तव में दोनों पक्षों की सहमति ही असल है और उसका फल और नतीजा उस चीज का अनिवार्य होना है। जो समझौते के माध्यम

से उन पर अनिवार्य हो गया है।'' (फतावा इब्ने तैमिया भाग-3, पृ.-239)

यह तो इस मसले के सम्बन्ध में एक फिक्ही और तार्किक चर्चा थी और इस पर चर्चा करने की बहुत गुंजाइश हो सकती है लेकिन असली बात यह सोचने की है कि भारत में अशिक्षा, शरीअत के अहकाम से अनभिज्ञता और समाज में इस्लामी रूझान से वंचित होना है। और दूसरी कौमों के साथ रहकर उनसे प्रभावित होना जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। मुसलमानों में बहु विवाह (Polygamy) का चलन हिन्दुओं की अपेक्षा कम है इसी प्रकार तलाक का प्रयोग भी बहुत सी सामाजिक बुराइयों के बावजूद मुस्लिम समाज में तलाक बहुत नहीं है। और इस तरह की घटनाएं जो घटती हैं यदि उनका सर्वेक्षण किया जाये तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि 80% तलाक बिना कारण होते हैं और इसी अनुपात में दूसरा निकाह भी सोच समझ कर और अच्छाई बुराई देख कर नहीं होता बल्कि क्षणिक प्रतिक्रिया होती है और दूसरे निकाह के लिए तो शरीअत का सहारा लिया जाता है लेकिन इस्लाम में जो न्याय का सिद्धान्त है उसकी अनदेखी की जाती है। इसलिए हमारे सामाजिक ढ़ाँचे को जो हानि पहुँचती है, वह तो है, और जो जग हँसाई होती है और शरीअत की पवित्रता पर चोटें की जाती हैं घुमा-फिरा कर उनका कारण हम ही बनते हैं।

ऐसे समय में इच्छा होती है कि ऐसे अल्लाह से न डरने वाले और गुनाहों के नतीजे की परवाह न करने वालों के लिए अगर हम हजरत उमर (रजि.) की तरह कोड़े की सजा नहीं दे सकते तो ऐसे प्रतिबन्ध (Restrictions) लगाएं जो शरीअत के अन्तर्गत हों और इस तरह पीड़ित औरतों को इससे छुटकारे की राह निकल आये। इस मामले में इमाम अहमद बिन हम्बल के दृष्टिकोण के अन्तर्गत इस आवश्यकता को हम पूरा कर सकते हैं। हम्बली फिक्ह में यह व्यवस्था रखी गई है कि औरत निकाह के समय यह शर्त लगा दे कि मर्द उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं करेगा तो अगर वह दूसरा निकाह कर ले तो औरत अपना निकाह निरस्त करा सकती है। (अल-मुगनी, भाग-7, पृ.-71)

सावधानी के तौर पर इस शर्त में कुछ और बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिए जब दारुल क़ज़ा महसूस करे कि बीमारी और आर्थिक करणों से दूसरा

निकाह करने की योग्यता न हो और उसकी आवश्यकता भी न हो तो वह दूसरा निकाह नहीं कर सकेगा। मेरा मानना है कि तक़्लीद (अनुकरण) एक आवश्यकता है इस दौर में स्वेच्छाचार को लगाम देने के लिए तकलीद-ए-शख्सी (व्यक्तिगत अनुकरण) ही छुट्कारा का माध्यम है। इस तरह के संवेदनशील मामलों में फिक्ह के प्रतिबन्धों से किस सीमा तक हट कर शरीअत के आदेश के (वसीअतर-तनाजुर) वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में सोचने व समझने की आवश्यकता है ताकि इस देश में शरीअत के कानून की रक्षा हो सके।

उत्तर-प्रश्न-2

तलाक का अधिकार सौंपने का मामला औरत को तलाक का अधिकार सौंपने को फिक्ह की शब्दावली में 'तफ्वीज़-ए-तलाक़' कहा जाता है। शरीअत में इस बात की भी गुंजाइश है कि पति किसी और व्यक्ति से कहे कि वह उसकी पत्नी को तलाक दे दे। लेकिन अन्तर यह है कि पहली स्थिति तलाक का स्वामी बनाना है और दूसरी स्थिति तलाक का वकील बनाना है पहली स्थिति में पति इस अधिकार को वापस नहीं ले सकता है और दूसरी स्थिति में वापस ले सकता है। पति दिया हुआ अधिकार वापस नहीं ले सकता इसके बारे में अल्लामा कासानी लिखते है।

''पति दिये हुए अधिकार को वापस नहीं ले सकता और न औरत जो उसे अधिकार दिया गया उसे लेने से मना कर सकती है और न उसे निरस्त कर सकती है इस लिए कि तलाक का स्वामित्व उसके पास आ जाता है और जब स्वामित्व दूसरे के हाथ में चला जाता है तो स्वामित्व/अभिभावकत्व समाप्त हो जाता है। अत: न समाप्त किया जा सकता है न मना किया जा सकता है और न वापस लिया जा सकता है।'' (बदाए-उल-सनाएय भाग-3, पृ.-113)

दूसरी सूरत:

दूसरी सिथिति यह है कि निकाह के समय ही तलाक का अधिकार सौंप दिया जाये और यह स्थिति जायज़ है लेकिन यह अनिवार्य है कि इजाब (प्रस्ताव) औरत की तरफ से हो जिसमें तलाक का अधिकार सौंपने की शर्त

लगी हो और मर्द उसे कुबूल (स्वीकृत) कर ले। अगर मर्द की तरफ से इजाब (प्रस्ताव) हो और वह इजाब के साथ तफ्वीज-ए-तलाक करे और औरत कुबूल (स्वीकृति) दे तो इसका एतेबार (भरोसा) नहीं।

''इसी पर यह मसला है कि औरत इस शर्त पर निकाह करे कि उस पर तलाक लागू हो जाये या उसे तलाक का अधिकार प्राप्त हो जब चाहे अपने ऊपर लागू कर ले। तो तलाक लागू न होगी और औरत को अधिकार प्राप्त न होगा। अगर प्रस्ताव औरत की तरफ से हो और वह शर्त रख दे कि मुझ पर तलाक लागू हो जाये या तलाक का अधिकार हो, जब चाहे वह अपने ऊपर तलाक लागू करे ले और पति ने उसे स्वीकृति दे दी तो तलाक लागू हो जायेगा और पत्नी को अधिकार प्राप्त हो जायेगा।'' (खुलासतुल-फतावा-भाग-4, पृ.-29)

इसी हवाले से इसको इब्ने नजीम ने (अल-बहरुर्रायक, भाग-3, पृ.-318) और, इब्ने नजीम के हवाले से अल्लामा शामी ने इसको नकल किया है (रद्दुल-मुखतार भाग-2, पृ.-485), फतावा बज़ाज़िया में भी तलाक का अधिकार सौंपने की इसी स्थिति का कुछ प्रतिबन्धों के साथ उल्लेख किया गया है।

औरत को सन्देह हो कि निकाह हो गया तो निकाह के बाद पति उसको तलाक का अधिकार नहीं सौंपेगा तो उसे यूँ कहना चाहिए कि मैंने तुमसे इसी महर के बदले, इस शर्त पर निकाह किया कि तलाक का अधिकार मुझे प्राप्त होगा, जब भी तुम मुझे बिना गलती मारो या मेरी उपस्थिति में दूसरा निकाह कर लो या दासी (कनीज़) लाओ या मुझसे एक वर्ष तक गायब रहो ऐसी स्थितियों में मैं जब चाहूँगी अपने ऊपर तलाक बाइन (अलगाव कर देने वाला) लागू कर लूँगी।''

इन शर्तों का पालन पति के लिए अनिवार्य है क्योंकि उसे वापस लेने का अधिकार नहीं होता है या जो अधिकार औरत को दे दिया गया उसे प्रयोग से रोक नहीं सकता न उसे सामाप्त कर सकता है। क्योंकि उसने औरत को तलाक का स्वामी बना दिया है। और जो किसी दूसरे को स्वामी बना दे उस चीज से उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। इसलिए वह वापस लेकर, या निरस्त करके इस अधिकार को समाप्त करने का वह अधिकारी नहीं है।

पत्नी को तलाक़ का अधिकार सौंपना:

तलाक का अधिकार सौंपने की पहली स्थिति यह है कि निकाह से पूर्व ही अधिकार सौंपने का समझौता हो जाये और 'काबीन नामा' पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जायें यह भी जाएज है। ऐसी स्थिति में अनिवार्य है कि अधिकार सौंपने में निकाह की शर्त को बयान कर दिया जाये। उदाहरण के तौर पर यूँ कहे ''अगर मैंने तुमसे निकाह किया और अमुक-अमुक बातें मेरी तरफ से पायी गईं तो तुमको अपने आप पर तलाक बाइन (अलग कर देने वाला) लागू करने का अधिकार होगा। अत: हिदाया में है।

तलाक औरत की तरफ से जाएज नहीं सिवाय इसके कि शर्त लगाई गई तलाक देने वाला निकाह का स्वामी हो या निकाह के स्वामी होने की तरफ निस्बत करे (हवाला दे) इस लिए कि शर्त के साथ आने वाली स्थिति का स्पष्ट होना अनिवार्य है ताकि औरत के लिए यह एक भय का कारण बने और श्रेष्ठता जाहिर हो सके और यह इन्हीं दो तरीकों में से हो सकता है। (हिदाया भाग-2, पृ.-385)

तो जैसे शर्त लगाई तलाक के लिए निकाह की तरफ निस्बत (इशारा) जरूरी है अन्यथा: बात का कोई प्रभाव नहीं रहेगा। इसी तरह तलाक का अधिकार सौंपने के लिए अनिवार्य है कि उसमें निकाह की शर्त लगी हो। निकाह के पूर्व निकाह पर शर्त लगाई हुई तलाक का अधिकार सौंपना और उसका निकाह के बाद प्रभावित होना, अल्लामा अब्दुर्रशीद ताहिर बुखारी की इन पंक्तियों से लिया जा सकता है।

''अगर पति ने कहा कि मैंने तुमसे इस शर्त पर निकाह किया है कि निकाह के बाद तुम पर तलाक लागू हो जाये या यह कि निकाह के बाद तलाक का अधिकार तुम्हारे हाथ होगा और औरत स्वीकार करले तो औरत को अधिकार प्राप्त हो जायेगा।'' (खुलासतुल फतावा भाग-2, पृ.-29)

तीसरी स्थिति यह है कि निकाह के बाद दोनों पक्ष तलाक का अधिकार सौंपने के समझौते पर हस्ताक्षर कर दें, तो यह जायज है चाहे समझौते की पहल पति की तरफ से हो या पत्नी की तरफ से। दोनों स्थितियाँ जायज हैं निकाह के

समय ही तलाक का अधिकार सौंपने के विषय पर समाज की स्थिति को देखते हुए, अच्छा नहीं समझा जायेगा। लेकिन अगर निकाह नामा छपवाना और छपे हुए फार्म को भरकर निकाह करने का चलन हो जाये जैसा कि दक्षिणी भारत में इसका प्रचलन और फार्म में इस तरह लिखा हुआ मौजूद है और धीरे-धीरे लोगों में प्रचलन बढ़ रहा है। इस प्रकार निकाह का रिकार्ड (दस्तावेज) सुरक्षित रहेगा। जिसके कारण निकाह का प्रमाण और महर आदि में मतभेद नहीं होगा।

तलाक का अधिकार सौंपने की इन स्थितियों में काबीन नामा में ऐसे शब्दों ाका प्रयोग करना होगा जो अधिकार सौंपने के लिए साधारण: प्रयुक्त होते हो जैसे 'मैं अपनी पत्नी.....अमुक की बेटी.....अमुक को यह अधिकार देता हूँ कि उपरोक्त शर्तों का पूरा न होना, 'जब कभी' दारुल कजा में सिद्ध हो जाए तो वह अपने ऊपर तलाक बाइन लागू कर सकती है। जब कभी का शब्द अरबी भाषा में 'मता मा' (متـــى مـــا)का समानार्थी है ऐसे शब्द शर्त के साथ तलाक का अधिकार सौंपने में औरत निकाह के समय अपने अधिकर को प्रयोग कर सकती है। अल्लामा कासानी के शब्दों में बिना समय का प्रतिबन्ध लगाए यूँ कहा कि 'तुम जब चाहो जहाँ चाहो यह सब तुम्हारे अधिकार में होगा' तो उस बैठक में भी उसे अधिकार प्राप्त होगा और उसके बाद भी। उस बैठक का प्रतिबन्ध उसके अधिकार के साथ नहीं लगाया जा सकता अगर वह उस अधिकार को निरस्त करेगा तो वह निरस्त नहीं होगा।

तलाक का अधिकार सौंपने में तलाक बाइन को स्पष्ट करना अनिवार्य है। तीन तलाक का हर जगह उल्लेख करना उचित नहीं और सुन्नत के विरुद्ध है और गुनाह है। केवल तलाक कहना काफी नहीं। इससे मात्र तलाके रजई (वह तलाक जो वापस हो सकता है) होगा। और इससे मर्द को एक रूप से पक्षीय रुजूअ (वापसे होने) का अधिकार बाकी रहेगा। तो यह औरत को एक हाथ से छोड़ना ओर दूसरे हाथ से वापस बुलाने जैसा है।

चूँकि तलाक एक संवेदनशील मामला है। औरतों को इसका अधिकार बिना किसी प्रतिबन्ध के दे देना उचित नहीं है। मर्दों की ओर से तलाक के अनुचित प्रयोग ने जब कुछ अत्याचार ढ़ाया तो और औरतों को बिना किसी प्रतिबन्ध के

इसकी अनुमति देना क्या बुराई का कारण नहीं बनेगा? तो आवश्यक प्रतीत होता है कि तलाक का अधिकार सौंपना, मर्द की तरफ से अत्याचार, और दारुल-क़ज़ा या कुछ नेक लोगों की तरफ से सौंपे गये अधिकार के प्रयोग की अनुमति की शर्त लगा दी जाये। अगर कई लोगों की अनुमति और सहमति की तलाक के लिए शर्त लगा दी जाये तो उनकी सहमति और औरत द्वारा प्रस्तुत किए गये उज्र (परेशानी, कष्ट) के औचित्य से सहमत होने के बाद ही वह स्वयं पर तलाक लागू कर सकती है। फतावा काजी खाँ में है:

''कोई व्यक्ति अपनी बीवी (पत्नी) के मामले को दो व्यक्तियों के अधिकार में दे दे तो दोनों में से किसी एक को अकेले तलाक लागू करने का अधिकार न होगा।''

दारुल-क़जा को सौंपना:

मेरा विचार है कि तलाक का अधिकार सौंपने का ऐसा तरीका अपनाया जाये जिसमें तलाक का अधिकार दारुल कजा या शरीअत विभाग (Shariya Deptt)को दे दिया जाये। पत्नी के अतिरिक्त दूसरों को तलाक का अधिकार देना, उसको वकील बनाना है और वकालत कभी भी वापस ली जा सकती है। लेकिन अगर किसी तीसरे व्यक्ति की इच्छा पर तलाक का अधिकार प्रयोग करने के लिए छोड़ दिया जाये तो यह वकील बनाने के बजाये उसको अधिकार सोंपना है। (अल-खानिया, भाग-1, पृ.-524)

पति इस अधिकार को वापस नहीं ले सकता फतावा बजाजिया में है। ''अगर अनजान व्यक्ति से कहा कि औरत के तलाक का अधिकार तुम्हारे हाथ में है या यह कहे कि तुम चाहो तो तलाक दे दो, तो यह तुम्हारा मामला तुम्हारे हाथ में है'' कहने की तरह है। कि इसमें अधिकार बैठक में सीमित रहेगा और पति को उसे वापस लेने का अधिकार नहीं रहेगा।'' (बदायउस्सनायअ-भाग-3, पृ.-232)

और सेराजिया में है:

अनजान व्यक्ति से अपनी बीवी के बारे में कहे कि अगर चाहो तो उसे

तलाक दे दो, तो फिर इस अधिकार को वह वापस नहीं ले सकता।
(सेराजिया, पृ.-44)

फतावा बजाजिया में तलाक के अधिकार को इसी बैठक तक सीमित माना गया है कि शर्त के लिए जो शब्द प्रयोग किया गया है वह सर्वदा के लिए नहीं है चूँकि इसमें इन् शेअ्त(ان شيـــــــتَ)'अगर तू चाहे।' इसके बजाये यदि मता शेअ्ता (متـــى شيـــتَ)(तुम जब चाहो) कहा जाता तो बैठक के बाद भी यह अधिकार बाकी रहता। फिर अगर कुछ शर्तों के साथ दारुल कजा को तलाक का अधिकार सौंपा जाये ओर उसमें यह व्यवस्था की जाये कि औरत शरीअत के काजी के पास सही प्रमाण के साथ शर्तों में कमी को प्रमाणित कर दे या दूसरे हालात को देखते हुए काजी संतुष्ट हो जाये कि औरत का बयान सच्चा है तो वह औरत को तलाक बाइन (अलग कर देने वाला) दे सकता है। तो शायद यह अधिक अच्छी उपाय हो।

उत्तर-प्रश्न 3-4

दो परिस्थितियों में महर की शर्त और उसका मिक्दार (परिमाण)

तलाक़ और दूसरे निकाह की स्थिति में अतिरिक्त महर बढ़ाने का मसला एक ही तरह का है जहाँ दो स्थितियाँ हों और दो तरह का महर निर्धारित किया जाये और इस शर्त में औरत को लाभ हो तो क्या आदेश होगा, शर्तें मान्य होंगी अथवा नहीं? इस मसले में फुकहा में मतभेद है। मालिकी उलमा और शाफई उलमा के मतानुसार महर मिस्ल अनिवार्य होगा।

''अगर एक हजार महर पर निकाह किया, इस शर्त पर कि वह शहर से बाहर न ले जाये और दो हजार महर इस शर्त पर कि शहर से बाहर ले जाये तो महर नाजायज़ है और ऐसी स्थिति में महर मिस्ल अनिवार्य होगा।'' (शरह-मुहज्ज़ब भाग-16, पृ.-237)

इमाम अहमद के दृष्टिकोण से ये दोनों महर मान्य होंगी। ''अगर कहे एक हजार पर तुझसे निकाह किया और शर्त लगाये कि मैके से बाहर नहीं ले जाऊँगा

और दूसरी पत्नी न होगी और दो हजार महर इस शर्त पर कि मैके से बाहर ले जाऊँ या कोई और पत्नी हो इन दोनों स्थितियों में इमाम अहमद का स्पष्टीकरण मौजूद है कि ऐसा महर निर्धारित करना सही है।''

आगे इब्ने क़ोदामा ने इस सिलसिले में हम्बली फिक्ह से एक रिवायत नकल की है मगर वरीयता इसी को दिया है।

इमाम अबू हनीफ़ा और साहिबैन का दृष्टिकोण

जहाँ तक हनफी उलमा का मामला है उसमें इमाम साहब और साहिबैन में वही मतभेद है जिसका सवाल नामा (प्रश्नावली) में उल्लेख है। फुकहा ने इस सिलसिले में कई मसले नकल किये हैं जो एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं जिनके आदेशों में अन्तर है यहाँ उनका उल्लेख करना उचित होगा।

एक व्यक्ति ने निकाह के समय कहा कि अगर मनकूहा(दुल्हन) सुन्दर है तो महर दो हजार और सुन्दर नहीं है तो एक हजार, तो फतवा यह है कि दोनों शर्तें मान्य होंगी।

एक व्यक्ति ने निकाह के समय यह कहा कि दुल्हन अगर खानदानी तौर पर आजाद है तो महर दो हजार और खानदानी तौर पर गुलाम थी यद्यपि अब आजाद है तो महर एक हजार तो इस पर फतवा यह है कि दोनों शर्तें मान्य होंगी।

इन दोनों स्थितियों में इब्ने समआ ने इमाम मुहम्मद से वही मतभेद नकल किया है जो निम्नलिखित स्थिति में है लेकिन शोधकर्ता ने इब्ने समआ की नकल को स्वीकार नहीं किया है और उनको इमाम अबू हनीफा और साहिबैन के बीच सर्वसम्मत माना है।

इन दोनों स्थितियों का आदेश उस समय भी है जब निकाह के समय इस प्रकार महर निर्धारित किया जाये कि मर्द की कोई और पत्नी भी हो तो दो हजार होगी और पत्नी न हो तो एक हजार, अब भी दोनों शर्तें मान्य हैं।

एक व्यक्ति ने निकाह के समय यह कहा कि अगर तुम्हारे होते हुए मैं दूसरा निकाह करूँ या तुम्हें तुम्हारे शहर से बाहर लेजाऊँ तो महर दो हजार होगी

अन्यथा एक हजार। इस स्थिति में इमाम अबू हनीफा का दृष्टिकोण से निधारित महर एक हजार होगी और यदि दूसरा निकाह न किया तो महर एक हजार होगी और दूसरा निकाह कर लिया तो महर दो हजार और महर मिस्ल में जो कम हो वह अनिवार्य होगा। साहिबैन की दृष्टि में दोनों शर्तें मान्य हैं।

उपरोक्त में जो स्थितियाँ सर्वसम्मति से बयान की गई है उनके बारे में कथन विभिन्न हैं लेकिन स्वीकार्यता और वरीयता उसी को है जो उपरोक्त में बयान किया गया है। (खुलासतुल फतावा, भाग-2, पृ.-37, बहरुर्राइक, भाग-3, पृ.-160)

इन दोनों स्थितियों में जो अन्तर का कारण बतरया गया है, उसका साराँश यह है कि खूबसूरत और बद सूरत होना देखने योग्य है और निकाह के समय किसी और पत्नी का होना या न होना, खानदानी तौर पर गुलाम होना या आजाद होना पहले से है और भविष्य में दूसरा निकाह करना या न करना उसके शहर से बाहर ले जाना या नहीं ले जाना, इसका सम्बन्ध भविष्य से है। पहली दो स्थितियों में खतरा या तो मौजूद नहीं है या कम है, दूसरी स्थिति में खतरा अधिक है। पहली स्थितियों में टकराव की संभावना नहीं है या कम है जब कि दूसरी स्थिति में भविष्य में टकराव की संभावना अधिक है। (रद्दुल-मुख्तार, भाग-2, पृ.-326, बहरुर्राइक भाग-3, पृ.-163)

वास्तव में इमाम साहब का विचार है कि एक हजार महर निर्धारित है और चूँकि जिस घटना की शर्त लगाई गई है उसका घटित होना यक़ीनी नहीं है, इसलिए दो हजार महर भी यकीनी नहीं है। साहिबैन का विचार है कि शर्त और शर्त से सम्बन्धित महर की मिक्दार (परिमाण) दोनों मालूम और तय शुदा है और स्पष्ट है और साफ है। इस लिए न तो ओझल है और न भविष्य में किसी मतभेद का सन्देह है। सच तो यह है कि अमली तौर पर इस तरह के मसलों में कोई मतभेद नहीं होता और फतवा में दोनों तरह की रायें (मत) हैं लेकिन इमाम साहब के कथन को साहिबैन के कथन पर वरीयता दी जायेगी और मुफ्ती को दोनों कथनों में से किसी भी कथन को अपनाने की गुँजाइश है। फतावा सिराजिया में है।

''फतवा पूरे तौर से इमाम अबू हनीफा, साहिबैन, इमाम अबू यूसुफ, इमाम मुहम्मद, फिर क्रमशः इमाम ज़फर(زفـــــر)और हसन बिन जियाद के कथन पर होगा। कुछ सज्जनों का विचार है कि एक तरफ इमाम अबू हनीफा और दूसरी तरफ साहिबैन हों तो मुफ्ती को अधिकार होगा। पहला कथन सच्चाई से अधिक निकट है।

अल्लामा सेराजुद्दीन अवदी ने इमाम साहब के कथन की तुलना में साहिबैन के कथन पर फतवा को सही न मानने को ही वरीयता दी है लेकिन अमली तौर पर सैकड़ों मसले ऐसे हैं कि जिनमें साहिबैन के कथन पर फतवा दिया गया है इसीलिए 'हावी कुदसी' की बात अधिक अच्छी लगती है कि दलील की ताकत के आधार पर साहिबैन के कथन को वरीयता दी जा सकती है। जबकि न्याय और गवाही के अध्याय में इमाम अबू यूसुफ, रिश्तों (ज़विल-अरहाम) के मसलों में इमाम मुहम्मद और 17 मसलों में अकेले इमाम जफर के कथन को फतावा के लिए वरीयता दी गई है। (रद्दुल-मुख्तार, भाग-1, पृ.-29)

तो साहिबैन के कथन पर फतवा न देना या उसके लिए मना करना समझ से बाहर है। हालाँकि यह भी मालूम है और शोध कर्ताओं का विचार है कि आम तौर पर साहिबैन की राय इमाम साहब के ही कथन पर आधारित है। दूसरे, सज्जनों ने इन दोनों कथनों को नक़ल करके यह स्पष्ट नहीं किया है कि कौन सा कथन सही और वरीयता योग्य है जिसके आधार पर फतवा दिया जा सके? और ऐसे आदेशों में वरीयता का नियम क्या है? इसके बारे में अल्लामा हस्कफी लिखते हैं अगर उलमा बिना वरीयता के विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं और सही कथन में मतभेद जाहिर करते हैं, मैं कहूँगा कि बुजुर्गों के तरीके के अनुसार अमल किया जाये अर्थात प्रचलन, हालात, उनके लिए अधिक आसान, आपसी मामलात के अनुसार और तर्क के आधार पर जो कथन प्रबल हो उस पर अमल किया जाये।

तीसरे, आवश्यकता पड़ने पर कमजोर कथन पर भी फतवा की गुंजाइश है। अल्लामा शामी इस पर टिप्पणी करते हैं कि कमजोर कथन पर फतवा की गुँजाइश नहीं है।

हालाँकि फतवा से सम्बन्धित इस कानून का इतनी स्पष्टता के साथ शायद किसी और ने इसका बयान नहीं किया है लेकिन फिक्ह की मौजूदा किताबों में इसके उदाहरण मौजूद हैं। अब मैं यह कहने की अनुमति चाहूँगा कि आवश्यकता व्यक्तिगत होती है। और सामाजिक भी होती है। इस वक्त तलाक पर गम्भीर फैसले के बजाये मात्र मौजूदा पत्नी से बदला लेने की भावना से दूसरा निकाह करने पर एक सीमा तक रोक लगाना एक सामाजिक आवश्यकता है। इस लिए यह बात अधिक ठीक है कि साहिबैन के कथनानुसार फतवा दिया जाये, कि इससे समाज में सुधार और सामाजिक अन्याय के रुकने की आशा है। औरत की तरफ से नौकरी की शर्त

उत्तर–प्रश्न–5

औरत की तरफ़ से मुलाज़िमत की शर्त

परिवारिक जीवन के बारे में इस्लाम की मौलिक धारण यह है कि जीविका कमाना और परिवार का पालन पोषण और घर की ज़िम्मेदारियाँ और के बाहर की जिम्मेदारियाँ और उनका पूरा करना मर्द के ऊपर है और बच्चों की देख–भाल प्रशिक्षण और घर के अन्य कामों (امور خانہ داری)को पूरा करना औरतों की जिम्मेदारी है। यह औरतों पर इस्लाम का बड़ा एहसान और उसकी प्रकृति और आदत के अनुकूल है। कुरआन की आयत है: (''वह तुम्हारे घरों में ही रहें'' सूर–ए–अहजाब–33) इसलिए जो नौकरियाँ शरीअत का पालन करते हुए की जा सकती है, महिलाओं के लिए आवश्यकता और मजबूरी के बिना ऐसी भी नौकरियाँ उचित नहीं हैं। फिर पत्नियों की जीविका पति पर इसीलिए अनिवार्य किया गया है कि वह उसके और उसके बाल बच्चों की देख रेख और प्रशिक्षण (तरबियत) के लिए घर के अन्दर घिरी रहती हैं। (हिदाया, भाग–2, पृ.–417) और उसने सारा समय इस मातृत्व के कर्त्तव्य के पालन के लिए दे रखा है।

महिला का स्वयं को घर के बाहर के ऐसे कामों से अलग कर लेना जो

मर्द का बीवी को घर के अन्दर तक ही रखने के अधिकार को प्रभावित करते हों, अनिवार्य है। यहाँ तक कि फुक्हा ने लिखा है, औरत पति की अनुमति के बिना इल्मी मजालिस (ज्ञान की बैठकों) में जाना चाहे तो यह जायज नहीं है। और अल्लामा हस्कफी का बयान है ''पति को अधिकार है कि पत्नी को धागा कातने और ऐसे काम से रोके यद्यपि वह अनजाने व्यक्ति के लिए सेवा भाव से करे चाहे वह दाया (Maid), या धोबिन हो क्यों कि पति का अधिकार सेवाभाव से किये जाने वाले कार्यों से ऊपर है, इस तरह वह ज्ञान की बैठकों में जाने से रोक सकता है सिवाय इसके कि उसके सामने कोई ऐसी स्थिति आ जाये जिसके सम्बंध में पति कुछ न पूछे। (दुर्रुल-मुख्तार अला हामिशिर्रद्द भाग-2, पृ.-665)

इसलिए औरत की नौकरी की शर्त निकाह के उद्देश्य से अलग है और ऐसी शर्त को अमान्य होना चाहिए। अगर मर्द ने स्वीकार कर लिया तो बाद में भी वह नौकरी छोड़ने का आदेश दे सकता है, लेकिन अगर कोई व्यक्ति बेरोजगार हो औरत की जीविका न अदा कर पाता हो, हठ की राह अपना रखी हो, मजबूर होकर औरत ने नौकरी कर ली तो शरीअत में जायज है। तो काजी अनुभव और हालात को देखते हुए फैसला कर सकता है। या तो तुरन्त नौकरी से रोक दे या यह अनुमान लगाये कि मर्द अपने माँग में वास्तव में गम्भीर है या पत्नी को और अधिक कष्ट में डालने की नीयत से शरीअत का सहारा लेकर अपने गलत उद्देश्य को पूरा करना चाहता है।

उत्तर का साराँश:

प्र.1(अ) ऐसी शर्तें जो उन्हीं कर्त्तव्यों और अधिकारों को मज़बूत करती हैं जो निकाह के कारण लागू हुए हैं जायज हैं।

(ब) ऐसी शर्तें जो निकाह की शर्तों में से किसी शर्त को निरस्त करती हैं या निकाह के अनिवार्य आदेशों में से किसी आदेश में परिवर्तन लाती हों अस्वीकार्य और नाजायज़ हैं लेकिन ऐसी शर्तों के साथ भी निकाह हो जाता है।

(स) ऐसी शर्तें जिनसे औरत को लाभ पहुँता है और शरीअत नें जिनको न अनिवार्य किया हो न मना किया हो उनके वैध होने में मतभेद हैं हनफी उलमा की दृष्टि में ऐसी शर्तें वैध हैं और हजरत उमर (रजि.), हजरत अब्दुल्लाह इब्ने मसूद (रजि.) साद इब्ने वक्फास (रजि.), अम्र इब्ने आस और मआविया इब्ने अबू सुफियान (रजि.) का भी यही दृष्टिकोण है। और मौजूदा हालात में इसी पर फतवा देना मुनासिब है।

(2) तलाक का अधिकार सौंपने की तीनों हालतें वैध हैं।

(अ) निकाह से पहले अधिकार सौंपने में आवश्यक है कि तलाक के अधिकार का इशारा निकाह की तरफ हो।

(ब) निकाह के समय अधिकार सौंपने के लिए आवश्यक है कि औरत की तरफ से पहल हो।

(स) निकाह के बाद तलाक का अधिकार सौंपने में यह दोनों शेर्तें नहीं हैं, हाँ उनका स्वीकार करना या न करना मर्द के अधिकार में है।

अधिकार सौंपने में सबसे अच्छा यह है कि अधिकार औरत के बजाए दारुल क़जा को सौंपा जाए।

3-4 दो स्थितियों में महर की दो मिक्दार (परिमाण) की शर्त लगाना साहिबैन के दृष्टिकोण से जायज़ा है और मौजूदा हालात में उस पर फतवा देना उचित है।

5 पत्नी को घर के अन्दर ही सीमित रखने का मर्द का अधिकार ऐसा ही है जैसा औरत का जीविका पाने का अधिकार। इसीलिए औरत की तरफ से नौकरी की शर्त लगाना वैध नहीं है। हाँ, अगर निकाह के बाद मर्द की तरफ से जीविका न पाने के कारण औरत ने कोई नौकरी कर ली और पति उसे छोड़ने के लिए कह रहा है और पत्नी को भविष्य में पति से जीविका न मिलने का सन्देह है तो क़ाज़ी हालात को देखने हुए उचित फैसला करे।

☆☆☆

निकाह में शर्त लगाना

मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवी

निकाह में लगाई गई शर्तों की प्रश्नावली को तीन भागों में बाँटा गया है:

1. ऐसी शर्तें जिनसे किसी पक्ष पर कोई नयी जिम्मेदारी नहीं आती है बल्कि स्वयं निकाह से जो जिम्मेदारी किसी पक्ष पर आती है उसी शर्त को निकाह के समय बयान कर दिया जाए। जैसे पत्नी का यह शर्त लगाना कि उसकी जीविका पति के ज़िम्मे होगी।

यह बात यहाँ स्पष्ट है कि ऐसी शर्तें चर्चा योग्य नहीं हैं। निकाह के बाद जीविका देना अनिवार्य है और पति के लिए इस का पालन करना अनिवार्य होने में पूर्वज फक़ीहों में कोई मतभेद नहीं है।

(2) निकाह के समय किसी पक्ष का कोई ऐसी शर्त लगाना जिसका उद्देश्य किसी जिम्मेदारी से बचना हो जैसे पति का निकाह के समय यह शर्त लगाना कि वह पत्नी की जीविका का जिम्मेदार नहीं होगा।

ऐसी शर्त लगाने से निकाह निरस्त नहीं होता बल्कि शर्त निरस्त और अवैध मानी जायेगी, हाँ, अगर एक निर्धारित समय के लिए निकाह की शर्त लगाई जिसे मुताअ या अल्पकालिक कहा जाता है अधिकाँश फुकहा की राय में निकाह नहीं होगा। प्रश्नावली में तीसरे किस्म प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। प्रश्नावली के शब्दों में उनका निचोड़ यह है:

(3) निकाह के समय किसी पक्ष का ऐसी शर्त लगाना जो प्रश्न-1 और-2 की परिधि (दायरे) में नहीं आते। इसके फलस्वरूप किसी पक्ष को ऐसा अधिकार प्राप्त होता है जो बिना शर्त के निकाह में प्राप्त नहीं होता और दूसरे पक्ष पर ऐसी पाबन्दी और जिम्मेदारी आ जाती है जो बिना शर्त के

निकाह की स्थिति में नहीं आती है जैसे पत्नी का यह शर्त लगाना कि पति उसके होते हुए दूसरा निकाह नहीं करेगा, या पत्नी को उसके पैतृक निवास पर रखेगा और वहाँ से निकाल कर दूसरी जगह नहीं ले जायेगा।

निकाह और दूसरे समझौतों में शर्त लगाने के सम्बन्ध में इस्लामी फुकहा का दृष्टकोण अलग-अलग है। जाहिरिया फुक़्हा (इब्ने हज़्म आदि) का दृष्टिकोण यह है कि निकाह आदि में वही शर्त लगाई जाये जो कुरआन व सुन्नत के शब्दों से सिद्ध हो। इन विद्वानों का दृष्टिकोण यह है कि शरीअत के अनुसार समझौतों (विक्रय, निकाह किरायादारी इत्यादि) की तरह इनके प्रभाव भी शरीअत की तरफ से निर्धारित हैं। इन समझौतों में अपनी तरफ से शर्त लगाना और उनके प्रभाव में हस्तक्षेप करने जैसा है और इससे इन समझौतों के उद्देश्य पर प्रभाव पड़ सकता है। इस लिए निकाह में ऐसी शर्तों की गुंजाइश नहीं है जो कुरआन और सुन्नत में न हों।

इसके विपरीत दूसरा दृष्टिकोण हम्बली फुकहा का है। उनके अनुसार पति पत्नी निकाह में अपनी मन पसन्द शर्तें रख सकते हैं और निकाह के समझौतों के प्रभाव में बदलाव ला सकते हैं लेकिन इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह शर्तें निकाह के उद्देश्यों और उसकी आवश्यकताओं के विपरीत न हों। निकाह के समझौते और दूसरे समझौतों में ऐसी शर्त नहीं लगाई जा सकती जिसको कुरआन व सुन्नत में स्पष्ट रूप से मना कर दिया गया हो। जैसे निकाह के समय औरत का यह शर्त लगाना कि वह पहली पत्नी को तलाक दे दे।

ज़ाहिरीया और हम्बली दो अलग मसलकों के बीच अधिकांश फुकहा (हनफी, शाफई, मालिकी) का दृष्टिकोण है कि इन फुकहा की दृष्टि में शर्त लगाने का मामला न तो जाहेरीया की तरह बहुत तंग (संकरा) और न हम्बली उलमा की तरह बहुत खुला है।

अधिकांश फुकहा की राय में हर वह शर्त जो ना-काबिल-ए-एतेबार है और निकाह की आवश्यकता में सम्मिलित न हो और न तो निकाह की आवश्यकतओं को बल देती हो, और इसके पूरा करने की अनिवार्यता पर कुरआन व सुन्नत से कोई दलील मौजूद न हो, अधिकांश फुकहा इस तरह की

हर शर्त को अमान्य बताते हैं। लेकिन इनके कारण निकाह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। और निकाह हो जायेगा।

चारों इमामों में इमाम अहमद बिन हम्बल का दृष्टिकोण बहुत विस्तृत है। वह केवल उन्हीं शर्तों को अवैध कहते हैं जिनसे निकाह के समझौते की आवश्यकताओं पर बुरा प्रभाव पड़े या शरीअत ने जिनको स्पष्ट रूप से मना कर दिया हो जैसे औरत यह शर्त लगाये कि मर्द अपनी पहली पत्नी को तलाक दे। हनफी और शाफई दृष्टिकोण से वही शर्तें मान्य हैं जो निकाह की आवश्यकताओं के अनुसार हों और उनके पक्ष में कोई शरई दलील मौजूद हो (कुरआन व सुन्नत, कयास या अनुमान और उर्फ या प्रचलन) इमाम मालिक और मशहूर कथन के अनुसार हनफी उलमा शफई उलमा के साथ हैं और उनका गैर मशहूर कथन इमाम अहमद बिन हम्बल के अनुसार है। इमाम अहमद बिन हम्बल और तीनों इमामों का मतभेद वास्तव में उन शर्तों पर है जो सही या गलत किसी विशेष दलील से सिद्ध न हों। ऐसी शर्तों को अधिकांश फुकहा अनिवार्य नहीं मानते और अविश्वसनीय बताते हैं। इनके दृष्टिकोण में ऐसी शर्तों का पूरा करना अनिवार्य नहीं है और इन शर्तों को भंग करने पर दूसरे पक्ष को निकाह निरस्त करने या अदालत में जाने का कोई अधिकार नहीं होगा। इसके विपरीत इमाम अहमद बिन हम्बल के दृष्टिकोण में यह शर्तें अनिवार्य होंगी और औरत की ओर से यह शर्तें लगाई गई थीं और पति ने इन शर्तों को पूरा न किया तो औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार होगा।

इमाम अहमद बिन हम्बल और तीनों इमामों के मतभेद के अतिरिक्त स्पष्टीकरण इन उदाहरणों से हो सकता है जिन्हें फुकहा ने बहस में बयान किया है। कुछ ऐसी आदर्श शर्तें निम्नलिखित हैं।

(1) निकाह में औरत यह शर्त लगाए कि पति उसके निकाह में होते हुए दूसरा निकाह नहीं करेगा।

(2) औरत की तरफ से यह शर्त लगाई जाए कि पति उसे पैतृक निवास पर रखेगा और बाहर नहीं ले जाएगा।

(3) औरत ने निकाह के समय यह शर्त लगाई कि पति पहली पत्नी को तलाक

दे देगा।

इनमें से तीसरी शर्त के बारे में हम्बली फिक्ह में दो कथन मिलते हैं। सही और वरीयता पूर्ण यह है कि औरत की तरफ से ऐसी शर्त लगाना अवैध है और यदि शर्त लगाई गई तो पति पर उसका पूरा करना अनिवार्य नहीं होगा। हदीस से सिद्ध है कि रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने सौतन की तलाक की माँग करने से मना किया, इससे वरीयता प्राप्त कथन की दृष्टि से हम्बली उलमा की दृष्टि में भी यह शर्त निरस्त है, हाँ, पहली दो शर्तों में इमाम अहमद बिन हम्बल और तीनों इमामों के बीच मतभेद नकल किया गया है। इमाम अहमद इन दोनों शर्तों पर अमल करना अनिवार्य बताते हैं और पति की तरफ से पूरा न करने पर औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार देते हैं लेकिन तीनों इमाम शुरू की दो शर्तों को गलत और अविश्वसनीय मानते हैं और पति पर उनका पालन अनिवार्य नहीं है।

इस सिलसिले में यह स्पष्टीकरण अनिवार्य है कि इमाम मालिक भी अपने गैर मशहूर कथन में इन शर्तों को अनिवार्य बताते हैं और अपने मशहूर कथन में इन शर्तों को अनिवार्य नहीं बताते हैं, यद्यपि वह इमाम अबू हनीफा और इमाम शाफई के दृष्टिकोण से सहमत हैं। लेकिन वह ऐसी शर्तें लगाना पसन्द नहीं करते हैं, इसके बावजूद उनका विचार है कि यदि ऐसी शर्त लगाई गई और पति पत्नी ने उसे निकाह के समय स्वीकार कर लिया तो उनका पूरा करना अच्छा है।

इन शर्तों में सहाबा, ताबईन, मुज्तहिद, फकीहों के मतभेद हदीसों के आधार पर हैं। जो उलमा इन शर्तों को अनिवार्य बताते हैं वह निम्नलिखित हदीस को दलील के तौर पर प्रयोग करते हैं जो सही बुखारी और हदीस की अन्य विश्वसनीय पुस्तकों में है।

''हजरत अक्बा से रिवायत है कि सबसे अधिका पूरा किए जाने की हकदार वह शर्तें हैं जिनके माध्यम से तुमने औरतों को हलाल किया है।''

इस हदीस की व्याख्या करते हुए इमाम खताबी लिखते हैं कि निकाह की शर्तें विभिन्न हैं कुछ शर्तों को पूरा करना सर्वसम्मति से अनिवार्य है। यह वह शर्तें

हैं जिनका आदेश अल्लाह ने स्वयं दिया है जैसे पत्नी को ''नियमानुसार निकाह में रखना उसके अधिकारों को देना, या भले तरीके से उसे छोड़ देना।'' कुछ उलमा ने उपरोक्त हदीस को इस किस्म की शर्तों पर लागू किया है। कुछ शर्तें वह हैं जिनको न पूरा करने पर सर्व सम्मति है जैसे किसी औरत का यह शर्त लगाना कि पति अपनी पहली पत्नी को तलाक दे और कुछ शर्तों के बारे में फुकहा में मतभेद है उदाहरणत: औरत का यह शर्त लगाना कि पति उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं करेगा और उसको उसके घर से अपने घर नहीं ले जायेगा। इसके समान अर्थ वाली हदीस की व्याख्या करते हुए इमाम नववी (रह.) लिखते हैं।

इमाम शाफई और अधिकांश उलमा यह कहते हैं कि इस हदीस का तात्पर्य वह शर्तें हैं जो निकाह की आवश्यकता के प्रतिकूल न हों बल्कि निकाह की आवश्यकता के उद्देश्य जैसे उच्छे व्यवहार की शर्त लगाना, और यह शर्त लगाना की पति पत्नी के अधिकारों को पूरा करने में कोई कमी नहीं करेगा। ऐसी शर्त जो निकाह की आवश्यकता के विपरीत हो जैसे यह शर्त लगाना कि पति बारी नहीं निर्धारित करेगा, दासी से शारीरिक सम्बन्ध नहीं स्थापित करेगा, पत्नी पर खर्च नहीं करेगा। इस प्रकार की शर्तों को पूरा करना अनिवार्य नहीं है बल्कि यह शर्त निरस्त हो जायेगी और निकाह में महर मिस्ल लागू हो जायेगी क्योंकि रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने फरमाया जो शर्त अल्लाह की किताब में न हो अवैध है। इमाम अहमद और एक गिराह के दृष्टिकोण के अनुसार शर्त का पूरा करना अनिवार्य है। इमाम तिर्मिजी ने निम्न हदीस का उल्लेख करते हुए ''सबसे अधिक पूरा किये जाने की हकदार वह शर्तें हैं जिके माध्यम से तुमने औरतों को हलाल किया है।''

लिखा है कि कुछ सहाबा का इसी हदीस पर अमल है उन्हीं में हजरत उमर बिन खत्ताब भी हैं। उन्होंने फरमाया कि यदि किसी मर्द ने औरत से निकाह करते समय यह शर्त लगाई कि औरत को उसके शहर से बाहर नहीं ले जायेगा तो उसको निकाल कर ले जाने का अधिकार नहीं है कुछ उलमा का भी यही कथन है। हजरत अली (रजि.) ने फरमाया ''अल्लाह की शर्त औरत की

शर्त से पहले है।'' मानों, हजरत अली के मतानुसार औरत की तरफ से शहर से निकाल कर बाहर न ले जाने की शर्त के बावजूद पति के लिए जायज़ है कि पत्नी को उसके श्हर से निकाल कर ले जाये। कुछ फुक़हा ने इस राय को अपनाया है और सुफियान सूरी और कुछ कूफा वालों का भी यही कथन है।

उपरोक्त हदीस इमाम अहमद बिन हम्बल और उन तमाम लोगों की सबसे मजबूत दलील है जो निकाह की शर्तों को स्वीकर करने में खुला विचार रखती है। इन सज्जनों के अनुसार उपरोक्त हदीस को देखते हुए निकाह की वह तमाम शर्तें सही और अनिवार्य होंगी जिनको कुरआन व हदीस में मना न किया गया हो और उनसे निकाह की अनिवार्य आवश्यकताएं प्रभावित न हों।

जो फुकहा निकाह और दूसरे समझौतों की शर्तों को बहुत सीमित वृत्त में स्वीकार करने का रूझान रखते हैं वह लोग भी हदीस को ही दलील के तौर पर प्रस्तुत करते हैं और इस सिलसिले में नबी (सल्ल.) के दो आदेशों को प्रस्तुत करते हैं।

''जो शर्त अल्लाह की किताब में न हो वह अवैध है यद्यपि उनकी संख्या सौ हो''

जिन शर्तों पर चर्चा चल रही है वह अल्लाह की किताब में नहीं है और न निकाह के समझौते के अनिवार्य आवश्यकताओं में है इसलिए उपरोक्त हदीस के अनुसार वह निरस्त और नाजायज होंगी।

दूसरी हदीस है कि ''मुसलमान अपनी शर्तों के पाबन्द होंगे सिवाय उस शर्तों के जो हलाल को हराम कर दें और हराम को हलाल कर दें।

यह स्पष्ट है कि इस हदीस में वास्तव में हलाल व हराम से तात्पर्य नहीं है। एक मुसलमान ईमान की हालत में हराम को हलाल और हलाल को हराम कैसे कर सकता है और करेगा तो मुसलमान कहाँ रह जायेगा? हलाल को हराम करने का अर्थ यही हो सकता है कि उस शर्त के आधार पर एक हलाल चीज पर पाबन्दी लग जाये और इसके आधार पर चाहने के बावजूद एक पक्ष जायज काम न कर सके। जिन शर्तों पर चर्चा चल रही है इस भावार्थ के अनुसार हलाल को हराम करना हुआ। उदाहरण के लिए एक औरत से किसी मर्द का निकाह होता है तो उस औरत के निकाह में होते हुए मर्द दूसरा और तीसरा

निकाह कर सकता है लेकिन अगर औरत ने इस शर्त पर निकाह किया कि पति उसकी मौजूदगी में किसी औरत से निकाह न करे और शरीअत के अनुसार इसे अनिवार्य करार दे दिया गया तो पति को दूसरा निकाह करने पर प्रतिबन्ध लग गया और उसे एक हलाल काम से रोक दिया गया आवश्यकता और इच्छा के बावजूद दूसरा निकाह नहीं कर सकता और करेगा तो पहली पत्नी से वंचित हो जायेगा।

चर्चित शर्तों को निरस्त करने वाले अधिकांश फुक़हा की दलील यह है कि इस्लामी शरीअत में समझौते और लेन देन के आदेश और उनके प्रभाव निर्धारित कर दिये गये हैं। इनके आदेश और प्रभाव की सीमा दोनों पक्षों पर नहीं छोड़ी गई है। समझौते और लेन देन के मामलात में शरई आदेशों का उल्लंघन करके दोनों पक्षों की तरफ से यदि कोई शर्त लगाई जाये तो उसका प्रभाव शरीअत के ढ़ाँचे पर गलत पड़ेगा। जैसे औरत का यह शर्त लगाना कि पति उसे पैतृक निवास पर रखेगा वहाँ से हटाएगा नहीं। जाहिरी तौर पर यह शर्त हानिकारक तो नहीं है लेकिन अगर गहराई में देखा जाये तो निकाह की आवश्यकता और उद्देश्य पर बुरे प्रभाव पड़ते हैं। उदाहरणत:: यदि पत्नी के पैतृक निवास में जीविका कमाने का कोई स्रोत नहीं है तो मजबूरी में उसे किसी और जगह रहना पड़ेगा, जहाँ वह चाहते हुए भी अपने बच्चों और पत्नी को साथ नहीं ले जा सकेगा, जिसके फलस्वरूप पति पत्नी का जीवन असन्तुष्ट स्थिति में गुजरेगा। बच्चों की शिक्षा और देख भाल के मामले में भी कष्ट उठाना पड़ेगा। पारिवारिक जीवन प्रभावित हो जाएगा।

इस्लामी शरीअत यह कहती है कि दोनों पक्षों को निकाह बन्धन से पहले एक दूसरे के बारे में पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। निकाह तय करने में अनुचित जल्द बाजी करने के बजाय हर तरह से जांच परख के बाद अल्लाह के नाम पर निकाह का फैसला किया जाय। निकाह के समय अविश्वास और असन्तोष का वातावरण नहीं होना चाहिए क्योंकि निकाह का बन्धन प्यार और विश्वास के वातावरण में ही सफल हो सकता है। निकाह के समय ऐसे वातावरण से विश्वास और सन्तुष्टि नहीं पैदा हो सकती है।

उक्त विषय में दलीलों व उद्देश्य को देखते हुए अधिकांश फुकहा (हनफी, मालिकी, शाफई) की राय अधिक महत्वपूर्ण लगती हैं। निकाह के समय औरत यह शर्त लगाये कि उसे अपने ऊपर तलाक लागू करने का अधिकार होगा या अमुक अमुक स्थिति में तलाक लागू करने का अधिकार होगा और पति उसे स्वीकार कर ले तो यह फिक्ह की शब्दावली में तफ्वीज़-ए-तलाक है। जाहिरीया (शब्दों का अनुसरण करने वाले) को छोड़कर तमाम फकीह तलाक का अधिकार सौंपने को सही करार देते हैं, पति को जिस तरह स्वयं तलाक देने का अधिकार है इसी तरह उस को भी अधिकार है कि तलाक लागू करने का अधिकार शर्त के साथ या बिना शर्त पत्नी को या किसी और व्यक्ति को सौंप दे। तफ्वीज़-ए-तलाक की वैधता पर अधिकांश फुकहा ने आयते तख्ईर (अपने लिए भलाई का रास्ता चुनना) के अतिरिक्त सहाबा के बहुत से कथनों को दलील बनाया है।

सैद्धान्तिक रूप से तफ्वीज-ए-तलाक की वैधता पर सर्वसम्मति के बावजूद इसके विस्तार और सम्बन्धित मामलों में फुक़्हा के बीच काफी मतभेद हैं। हनफी फुकहा (Jurists) कहते हैं, तलाक का अधिकार सौंप देने के बाद पति को उसे वापस लेने का अधिकार नहीं है। हनफी उलमा के दृष्टिकोण से विशेष शर्त और विवरण के साथ तलाक का अधिकार सौंपने का काम निकाह के पूर्व भी हो सकता है, निकाह के समय और निकाह के बाद भी।

हनफी फिकह के मसायल और उनके विस्तृत वर्णन के अनुसार तलाक का अधिकार सौंपने के विवेक पूर्ण और दूरदर्शी और परिस्थितियों के अनुकूल व्याख्या हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ अली थानवी ने अपनी किताब ''अल-हीलतुन-नाजिजा लिल-हालतिल आजिजा'' में की है। तलाक का अधिकार सौंपने के मसायल की रोशनी में विभिन्न 'काबीन नामा' तैय्यार करके हजरत थानवी ने मर्दों के इस तरह के अत्याचार का दरवाजा बन्द करना चाहा है कि जिससे बहुत से पति पत्नियों पर अत्याचार करते हैं या उनकी जीविका प्रदान नहीं करते है। वह निश्चिन्त होकर विदेश चले जाते हैं। निचोड़ यह है कि औरतों के अधिकार अदा करने और उन पर अत्याचार करने के साथ उन्हें तलाक देने

और खुला देने पर भी आमादा (राजी) नहीं होते हैं। अगर निकाह के समय काबीन नामा के रूप में तलाक सौंपने का अधिकार दिला दिया जाए तो काबीन नामा के उल्लंघन के समय औरत अपने ऊपर तलाक लागू कर सकती है जिससे उसे मर्द के अत्याचार से छुटकारा मिल जायेगा। हजरत थानवी ने विभिन्न काबीन नामों में जो शब्दावली प्रयोग किया है उसमें पूरी सावधानी बरती गई है। इस बात पर पूरा ध्यान दिया है कि मर्दों का अत्याचार भी रुक जाये और तलाक का अधिकार औरत के हाथ में आ जाने के कारण जो बुराई का सन्देह है उस पर भी रोक लग जाये।

'निकाह में शर्त' की प्रश्नावली में दो प्रश्न जो निकाह के समझौते में दो शर्तों के साथ दो महरों का मामला भी जुड़ा हुआ है उसका निचोड़ यह है कि यदि निकाह के समय महर इस तरह निर्धारित किया जाये कि यदि पति ने पत्नी को तलाक न दी तो महर दस हजार और अगर तलाक दी तो महर बीस हजार या इस तरह तय की जाये कि पति ने एक पत्नी के होते हुए दूसरा निकाह नहीं किया तो महर 15 हजार और अगर दूसरा निकाह किया तो महर तीस हजार।

फुकहा ने इस तरह महर निर्धारण पर चर्चा की है। साहिबैन ने दोनों शर्तों और दोनों महरों को वैध करार दिया है और जो शर्त पायी जायेगी उसी के अनुसार महर का भुगतान होगा। इमाम अहमद बिन हम्बल की भी यही राय है।

इमाम अबू हनीफा के दृष्टिकोण से जो महर पहले निर्धारित की गई वह वैध होगी। अगर पहली शर्त पाई गई तो निर्धारित की हुई महर अनिवार्य होगी। अगर दूसरी शर्त पाई गई तो महर मिस्ल अनिवार्य होगा। लेकिन वह निर्धारित महर से अधिक न हो। लेकिन स्वयं इमाम अबू हनीफा ने दो शर्तों को दो महरों से सम्बन्धित कुछ स्थितियों में जायज करार दिया है। उदाहरण के लिए, यदि इस तरह महर निर्धारित हो कि औरत अगर सुन्दरी हो तो महर दस हजार अैर अगर सुन्दरी न हो तो महर पाँच हजार। इस स्थिति में इमाम अबू हनीफा भी दोनों महरों को सही करार देते हैं और इन दोनों मसलों में इमाम अबू हनीफा ने किस आधार पर भेद किया है, इस पर हनफी फिक्ह की किताबों में विस्तार से चर्चा है जिनमें इसका इनकार और निन्दा भी है।

मेरे विचार में चर्चित विषय में साहिबैन की राय अपनाना उचित है, साहिबैन का कथन अत्यन्त स्पष्ट और सरल है और उसका पालन फतवा देने वाले और पूछने वाले दोनों के लिए आसान है, लेकिन इस बात को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि तलाक देने और न देने दोनों मामलों में से अगर तलाक के साथ महर का बड़ा धन सम्बन्धित है तो उसके भुगतान करना यदि पति के लिए असम्भव हो तो दूसरी बुराइयाँ पैदा होंगी, तलाक के घृणित होने के साथ-साथ इस्लामी शरीअत ने जिन उद्देश्यों से तलाक को वैध करार दिया है उन पर बुरा असर पड़ेगा, तलाक आवश्यक बन जाने के बावजूद अधिक महर के डर से लोग तलाक का कदम नहीं उठाएंगे और पत्नी से नफरत के कारण उससे छुटकारा लेने के लिए पाशविक व्यवहार करेंगे जैसा हिन्दू समाज में हो रहा है।

फिर असली बुराई स्वयं तलाक नहीं बल्कि एक साथ तीन तलाक से है। अगर पति सुन्नत के अनुसार एक बैठक में एक तलाक देता है तो दोनों के बीच मेल मिलाप की राहें खुली होती हैं इसलिए अधिक महर एक बैठक में तीन तलाक की शर्त के साथ सम्बन्धित रहना चाहिए ताकि तीन तलाक के चलन पर रोक लगे और अपेक्षाकृत अधिक महर के डर से तीन तलाक जैसा बुरा कदम न उठे।

प्रश्नावली के अन्तिम प्रश्न का उत्तर यह है कि ऐसी शर्त श्रीअत में अस्वीकार्य है। अधिकांश फुकहा के दृष्टिकोण में यह शर्तें निरस्त मानी जाती हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि यह शर्त निकाह के उद्देश्यों में सम्मिलित नहीं है न उनके ऊपर बल देती हैं। बल्कि इससे बढ़कर बात यह है कि यह शर्त निकाह के समझौते के अनिवार्य उद्देश्य के विपरीत है, निकाह के बाद इस्लामी शरीअत पत्नी का आवश्यक खर्च पति के ऊपर अनिवार्य करार देती है, चाहे वह अमीर हो या गरीब, और पति को यह अधिकार देती है कि उसकी पत्नी उसकी अनुमति के बिना (कुछ अपवादों को छोड़कर) उसके घर से बाहर न जाये। इस्लाम ने मर्द और औरत की प्रकृति और योग्यता को ध्यान में रखते हुए दोनों के काम बाँट दिये हैं, घर के बाहर का काम विशेष रूप से जीविकोपार्जन, मर्द

के ऊपर है और घर के भीतर की ज्म्मेदारी औरत पर डाली गई है। घर के भीतर की व्यवस्था और बच्चों के पालन-पाषण की जिम्मेदारी औरत पर है। स्पष्ट है कि घर के बाहर स्थायी नौकरी करके पत्नी पति और सन्तान की घरेलू जिम्मेदारी नहीं पूरा कर सकती। नौकरी करना अधिक से अधिक उसके लिए वैध कार्य कहा जा सकता है और घर की देख भाल और बच्चों का पालन पोषण उसका दायित्व है। स्वीकार्य और दायित्व में जब टकराव होगा तो दायित्व को वरीयता दी जायेगी।

औरत की तरफ से नौकरी की शर्त मर्द के उसे घर तक ही सीमित रखने (हब्स) के अधिकार को समाप्त कर देती है, और औरत को घर तक ही सीमित रखना निकाह के पश्चात एक आवश्यक अधिकार है, अतः इसको निरस्त करने वाली शर्त स्वयं निरस्त होगी। यह शर्त उसी प्रकार अमान्य होगी जिस तरह कि यह शर्त अमान्य होगी जैस पति को मेरे कहीं आने जाने पर हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा।

☆☆☆

निकाह में शर्त लगाना

मौलाना शम्स पीरज़ादा

निकाह पति पत्नी के बीच मजबूत समझौता है, जिसको कुरआन ने 'मीसाक़-ए-गलीज' ठोस समझौता कहा है। وَاَخذنا منكم ميثاقا غليضاً वह तुम से ठोस वचन ले चुकी हैं। (सूरः निसा-29)

यह बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके साथ कर्त्तव्य और अधिकार जुड़े हुए हैं, इसी तरह शरीअत के बनाने वाले ने महान उद्देश्यों को सामने रखा है जैसे यह उद्देश्य कि पति पत्नी के बीच प्यार भरा सम्बन्ध हो और यह उसी समय सम्भव है जब एक पक्ष दूसरे पक्ष का शोषण न करे और एक दूसरे पर नाजायज दबाव न डाले और बलपूर्वक कोई बात न मनवाये।

शरीअत ने मर्द को अधिकार दिये हैं कि वह अपने दायित्व को भली भाँति अदा करे और घर की व्यवस्था कायम रखे अगर वह उन अधिकारों को स्वतन्त्र रूप से प्रयोग न करे यदि वह ऐसा करता है तो यह शरीअत के उद्देश्य के विरुद्ध होगा। स्वतन्त्र व्यवहार से तात्पर्य मनमाना तरीका है और इसे औरत के अधिकार में दखलन्दाजी है। अगर मर्द इन अधिकारों को उचित ढंग से और अपनी बुद्धिमानी से प्रयोग करे तो दाम्पत्य जीवन में कोई कटुता पैदा नहीं होगी और यदि हो भी जाये तो उसकी जिम्मेदार औरत होगी।

महर को इसलिए अनिवार्य किया गया है ताकि वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ मर्द की तरफ से शुद्ध प्यार और मुहब्बत के उपहार से हो तथा समझौता निकाह की दृढ़ता का कारण बने।

एक से अधिक निकाह की अनुमति नैतिक पवित्रता को कायम रखने के लिए दी गई है और इस लिए भी दी गई है ताकि आपात स्थिति में जो

सामाजिक समस्यायें पैदा हों उनको हल करने में मददगार सिद्ध हो लेकिन यह अनुमति न्याय की शर्त पर दी गई है जिसका अर्थ है कि इस्लाम में असली आदेश एक ही पत्नी का है।

शरीअत ने मर्द को तलाक का अधिकार देकर औरत के साथ कोई अन्याय नहीं किया है बल्कि वैवाहिक जीवन को भावुक फैसलों से बचाने का हर सम्भव प्रयास किया गया है और मर्द के अत्याचार की स्थिति में औरत के लिए छुटकारे की व्यवस्था भी रखी है।

इस्लाम ने वैवाहिक समस्याओं को हल करने के लिए पेचीदा तरीका नहीं अपनाया है और घर की समस्या घर ही में हल करने के लिए उचित तरीके बताये हैं और जरूरी हिदायतें दी हैं।

निकाह के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए उन शर्तों पर चर्चा करनी हैं जिन से निकाह को बाँध दिया गया हो। इन शर्तों को तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) ऐसी शर्तें जिनमें किसी पक्ष पर कोई जिम्मेदारी सौंप दी गई हो बल्कि स्वयं निकाह के बाद जो जिम्मेदारी किसी पक्ष पर डाली गई हो उसको शर्त के रूप में निकाह के समय बयान कर दिया जाये। जैसे औरत की ओर से यह शर्त हो कि उसकी जीविका (नफ्क़ा) पति के ऊपर होगा इस शर्त की कोई आवश्यकता नहीं है और निकाह पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जो जिम्मेदारी शरीअत ने मर्द पर डाली है उसे पूरा करने का वह पाबन्द है।

(2) निकाह के समय किसी पक्ष का ऐसी शर्त लगाना जिसका उद्देश्य निकाह के बाद आने वाली जिम्मेदारियों से बचना हो जैसे पति का यह शर्त लगाना कि औरत की जीविका (नान व नफ्का) की ज़िम्मेदारी उसकी नहीं होगी तो शरीअत में ऐसी शर्त निष्प्रभावी और अमान्य होगी और निकाह हो जायेगा।

''रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने इस बात से रोका है कि कोई औरत अपनी बहन के तलाक की शर्त रखे'' (बुख़ारी-किताबु-श्शुरूत)

इमाम बुखारी ने इस हदीस को निकाह के अध्याय में भी रखा है।

वह शर्तें जो निकाह में वैध नहीं हैं इब्ने मसूद कहते हैं कि औरत अपनी बहन के तलाक की शर्त (निकाह में) न रखे।

अर्थात औरत इस शर्त पर निकाह न करे कि पति अपनी पहली बीवी को तलाक देदे। दासी को आजाद कर देने वाले को जो अभिभावकत्व का अधिकार प्राप्त होता है उसके विरुद्ध एक मामला नबी (सल्ल.) के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो आपने फरमाया।

अभिभावकत्व उसका है जिसने दासी (कनीज़) को आजाद किया चाहे उसका मालिक सौ शर्तें लगाये। अर्थात जो व्यक्ति धन खर्च करके किसी दासी को आजाद करेगा तो अभिभावक वही बन जायेगा (उस दासी का विरासत आदि का अधिकार) उसको प्राप्त होगा चाहे उसका मालिक अपने लिए अभिभावक बने रहने के शर्त पर उसे आजाद करे मतलब यह है कि जो व्यक्ति अपना धन देकर किसी दासी को आजाद करे शरीअत उसको अभिभावक मानती है, अत: इसके विपरीत कोई शर्त लगाई जाये तो वह अवैध व अमान्य होगी।

इससे यह मौलिक बात स्पष्ट हो जाती है कि दो पक्षों के मामलात में शरीअत ने जिसके जो अधिकार निर्धारित किये हैं अगर उनमें से किसी अधिकार के विपरीत एक पक्ष कोई शर्त लगाता है तो वह अमान्य होगा इसलिए निकाह के मामले में भी अगर एक पक्ष ऐसी शर्त लगाता है जो दूसरे पक्ष के अधिकार को प्रभावित करती हो तो वह अमान्य होगी और निकाह हो जायेगा।

(3) निकाह के समय किसी पक्ष का ऐसी शर्त लगाना जो उपरोक्त (1) और (2) में न हो और जिसके फलस्वरूप किसी पक्ष को ऐसा अधिकार प्राप्त होता हो जो बिना शर्त निकाह की स्थिति में न प्राप्त होता हो और दूसरे पक्ष पर ऐसी पाबन्दी या जिम्मेदारी आती हो जो बिना शर्त निकाह की स्थिति में न लगती हो, जैसे औरत यह शर्तें लगाए कि मर्द उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं करेगा या पत्नी को पैतृक निवास से अलग नहीं करेगा। इस समस्या पर माननीय पूर्वजों (सलफ़) के बीच मतभेद है।

निकाह की शर्तों की तीन किस्में हैं। पहली वह जिसका पूरा करना अनिवार्य है और वह ऐसी शर्त है जो लाभदायक हो और लाभ का माध्यम बने

जैसे पति, पत्नी को अपने घर या अपने शहर से बाहर नहीं ले जायेगा या उसको साथ लेकर सफर नहीं करेगा या उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं करेगा और न दासी रखेगा। ऐसी शर्त का पूरा करना अनिवार्य है और यदि शर्त पूरी न होगी तो औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार होगा। यह बात हजरत उमर बिन-अल-खत्ताब (रजि.) हजरत साद बिन वक्कास (रजि.) मआविया और अम्रबिन-अल-आस (रजि.) से रिवायत है। और शुरैह (شـــــریـــح) उमर बन अब्दुल अजीज, जाबिर बन जैद, ताऊस, औज़ाई और इसहाक का भी यही कथन है। लेकिन जुहरी कतादा, हिशाम इब्ने उर्वा, मालिक, लैस, सौरी, शाफई, इब्नुल मुन्जिर और दूसरे फिक्ह के विद्वानों ने इसे अवैध करार दिया है। अबू हनीफा और शाफई का कथन है कि इस स्थिति में निकाह हो जाता है लेकिन महर निरस्त हो जाती है और औरत के लिए महर मिस्ल आवश्यक हो जाती है इन विद्वानों के तर्क यह हैं कि नबी (सल्ल.) ने फरमया 'जो शर्त अल्लाह की किताब में नहीं है वह अवैध है यद्यपि ऐसी शर्तें चाहे सौ हों। यह शर्त अल्लाह की किताब में नहीं हैं क्योंकि शरीअत में इसकी आवश्यकता नहीं है। और नबी (सल्ल.) ने यह भी फरमाया कि ''मुसलामन अपनी शर्त के पाबन्द होते हैं परन्तु ऐसी शर्त जो हलाल (वैध) को हराम (अवैध) और हराम को हलाल कर देती हो वह जायज नहीं है क्योंकि यह शर्त हलाल को हराम कर देती है अर्थात दूसरी बीवी और दासी (लौंडी) और सफर जो कि हलाल हैं उनको हराम में बदल देती है। और ऐसी शर्त लगाना न निकाह के बन्धन के लिए विवेकपूर्ण है न इसकी आवश्यकता है और न उसका आधार रस्म व रिवाज में है और न लगू करने योग्य है इस लिए ऐसी शर्त अवैध है, यह तो ऐसा है जैसे पत्नी यह शर्त लगाए कि वह अपने आप को पति के हवाले नहीं करेगी। (अल-मुग़नी, भाग-6, पृ.-548)

जो उलमा इन शर्तों की वैधता के पक्ष में हैं वह इस हदीस को आधार बनाते हैंاحـق الشـروط ان تـوفـوابـه مـااستـحللتم بـه فروج (بخـاری کتـاب الشرائط) वह शर्तें पूरी होने की अधिक हकदार हैं जिनके द्वारा तुमने औरतों को हलाल किया है। (अल-बुखारी, किताबु-श्शरायत) लेकिन हदीस के मूल शब्द

'मस्तहल्लतुम बेही फुरूज (ماستحللتم به فروج)'(जिसके द्वारा तुमने औरतों को हलाल कर लिया है) इस बात पर स्पष्ट दलील है कि शर्तों से तात्पर्य शरीअत की लगाई गई वह शर्तें हैं जिनको स्वीकार करके वह विवाह के बन्धन में बंध जाता है जैसे महर, नान नफ्का (जीविका), हकूक की अदायगी और अच्छा व्यवहार इत्यादि। फतहुल बारी (बुखारी की टीका) में है।

''खताबी का कथन है कि निकाह की शर्तें कई किस्म की हैं। कुछ वह हैं जिनको पूरा करने पर सभी फुकहा सहमत हैं। वह अल्लाह की तरफ से दिये हुए आदेश हैं जैसे अच्छी तरह से औरत को रखना या अच्छी तरह उनको विदा कर देना। इस हदीस को कुछ फुकहा ने उसी रोशनी में देखा है। (फतहुल बारी भाग-9, पृ.-179)

हाफिज इब्ने हजर ने फतहुल बारी में एक हदीस का उल्लेख किया है। जो औरत की इस शर्त को कि वह इस मर्द के बाद दूसरा निकाह नहीं करेगी अवैध करार देती है। लिखते हैं।

''तबरानी ने अस्सगीर में एक हदीस नक़ल की है जिसकी सनदें हसन जाबिर से रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने उम्मे मुबश्शिर बिन्ते बराअ बिन मारूर को निकाह का सन्देश भेजा तो उसने कहा ''मेरी शर्त अपने पति के लिए यह है कि मैं उसके बाद निकाह नहीं करूँगी'' नबी (सल्ल.) ने कहा यह सही नहीं है।''

इसी पर इस शर्त का अनुमान लगाया जा सकता है जो दूसरे निकाह के बारे में औरत की तरफ से मर्द पर शर्त लगाई जाये।

हाफिज इब्ने हजर ने इमाम शाफई के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है।

''ऐसी शर्त जो निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध हो जैसे कि वह रात गुजारने की बारी तय नहीं करेगा या उसकी मौजूदगी में दासी नहीं रखेगा या उसकी जीविका अदा नहीं करेगा तो ऐसी शर्तों को पूरा करना अनिवार्य नहीं है।''

ऐसी शर्त जो निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध हो या जिनसे वह अधिकार प्रभावित हों जिनको शरीअत ने दिया है तो उनको अवैध कहा जा सकता है और उनको पूरा करना अनिवार्य नहीं है। हाँ, कुछ ऐसी शर्तें हो सकती हैं जो निकाह

के उद्देश्य के विरुद्ध न हों और उनका उद्देश्य किसी पक्ष को परेशानी में पड़ने से बचाना हो या सन्तोषजनक जीवन यापन के लिए रास्ता बनाना हो, जैसे औरत की तरफ से यह शर्त लगाना कि मर्द नौकरी के लिए बाहर नहीं जायेगा या औरत के लिए अलग फ्लैट की व्यवस्था करेगा या उसके लिए नौकरानी रखेगा तो इन शर्तों को पूरा करना नैतिक रूप से अनिवार्य है। अगर नहीं करेगा तो वादा खिलाफी का गुनाह होगा और औरत को अधिकार होगा कि वह तलाक की मांग करे और अगर वह उसे पूरा न करे तो अदालत से निकाह को निरस्त कराये। हजरत उमर (रजि.) का कहना है ''शर्तों की पाबन्दी अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनिवार्य है। (बुख़ारी भाग-9, पृ.-178)

इस अवसर पर जानकारी के लिए मुस्लिम पर्सनल लॉ के कुछ उदाहरण निम्नवत्: हैं।

औरत की तरफ से यह शर्त कि वह अपने माता-पिता के साथ रहने की उसे छूट होगी तो यह शर्त शून्य मानी जायेगी। (मुस्लिम ला-तय्यब जी, पृ.-59)

''----------पत्नी को पैतृक शहर से बाहर ले जाना ----------'' जाहिरी तौर पर उसकी इच्छा के विपरीत। यह भय निश्चित तौर पर, भारतीय-पाकिस्तानी पक्षों पर प्रभाव नहीं डालेगा जब कि पति पत्नी को कानूनी कठिनायियों का सामना किए बिना नहीं ले जा सकता। (वही-पृ.-62)

''दामपत्य के मामले जो सामने आये हैं उनको देखते हुए यह माना जाता है कि निकाह में यह शर्त लगाना कि पति दूसरा निकाह नहीं करेगा, यह शर्त लागू नहीं हो सकेगी।'' (वही, हवाला पृ.-64)

''इलाहाबाद के एक केस में पति ने पत्नी को निश्चित अवधि तक जीविका देने पर सहमति जताई, और तलाक नामा में गलती के कारण यह फैसला किया गया कि पति द्वारा लिखने में त्रुटि के बावजूद उसे वैध तलाक माना जायेगा। (प्रिंसिपल्स ऑफ मुहम्मडन लॉ, ले. मुल्ला, पृ.-325)

ऐसा समझौता जिसमें भविष्य में अलगाव की स्थिति में पति द्वारा पत्नी को जीविका की व्यवस्था हो वह शून्य माना जायेगा। यदि निकाह का बन्धन तलाक

द्वारा समाप्त हो जाता है, तो पत्नी को उस समय तक जीविका पाने का अधिकार है जिसका उल्लेख भाग, 279 में किया गया है न कि जीवन पर्यन्त। सिवाय इसके कि समझौते में जीवन पर्यन्त की व्यवस्था हो।

तलाक़ का अधिकार सौंपना:

निकाह बन्धन के समय यदि पत्नी शर्त लगाये कि उसे अपने ऊपर तलाक करने का हक होगा या अमुक, अमुक स्थितियों में तलाक करने का अधिकार होगा। और यदि पति इस शर्त को स्वीकार कर लेता है तो शरीअत में उसकी क्या हैसियत होगी? क्या इसके आधार पर औरत को तलाक का अधिकार होगा? और यदि पति निकाह के समय पत्नी को तलाक का अधिकार सौंपने के बाद उस अधिकार को वापस लेना चाहता है तो क्या यह अधिकार पति के पास रह जाता है अथवा नहीं?

तफ्वीज-ए-तलाक की व्याख्या डा. तन्जीलुर्रहमान ने 'मजमूआ क़वानीन-ए-इस्लाम' में इस तरह की है।

तफ़्वीज़-ए-तलाक (Delegation of the Power of Divorce) का अर्थ है पत्नी को तलाक देने का अधिकार सौंपना।

अत: औरत का मर्द से निकाह के समय यह शर्त लगाना कि वह तलाक की मलकिन (स्वामिनी) है शरीअत के अनुसार सही है। इसी तरह पति का पत्नी को निकाह के समय तलाक का अधिकार सौंपना भी वैध है। सीरिया के परिवारिक कानून के अनुसार पति को यह अधिकार प्राप्त है।

अगर पत्नी ने निकाह के समय पति से तलाक का अधिकार प्राप्त कर लिया हो तो निकाह के बाद वह उस अधिकार की स्वामिनी बन गई हो तो उस अधिकार का प्रयोग करके स्वयं को तलाक देकर दम्पति सम्बन्ध को निरस्त कर सकती है और उस तलाक को वैसा ही माना जायेगा जैसे पति ने पत्नी को स्वयं तलाक दी हो।

तलाक का अधिकार सौंपने के बाद पति उस अधिकार को निरस्त नहीं कर सकता क्योंकि अधिकार सौंपने के बाद पत्नी उस अधिकार की स्वयं

स्वामिनी (मालकिन) हो जाती है चाहे वह उस अधिकार का प्रयोग करे या न करे या जब चाहे करे, हाँ यदि तलाक का अधिकार एक निर्धारित समय के लिए सौंपा गया हो तो वह समय गुजरने के बाद अप्रभावी हो जायेगा।

लेकिन यदि पति ने पत्नी को तलाक का अधिकार सौंप दिया है परन्तु पति का तलाक का अधिकार इस से समाप्त नहीं होगा अत: यदि पति ने पत्नी को तलाक का अधिकार सौंप दिया और फिर पति ने उसे तलाक बाइन (तीन तलाक) दे दी तो औरत का अधिकार अवैध और लागू करेन योग्य नहीं होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि अधिकार सौंपने से स्वामित्व कैसे मिल गया? अगर औरत को स्वामित्व प्राप्त हो गया तो पति को तलाक का अधिकार क्यों बाकी रहा? इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि तलाक का अधिकार सौंपना तलाक का विकल्प है और विकल्प देने का अर्थ होता है किसी काम के करने या न करने का मालिक बनाना क्योंकि जिसको अधिकार दिया जाता है वह उस काम में अपने राय के अनुसार उस काम को कर सकता है इसलिए यदि पति अपनी पत्नी को तलाक सौंपने का विकल्प देता है तो इसका अर्थ है कि वह पत्नी को यह अधिकार देता है कि वह स्वयं पति से दम्पति सम्बन्ध से अलग हो सकती है। इसका अर्थ यह है कि औरत मालकिन होकर अपनी इच्छानुसार कर सकती है जिसका उद्देश्य यह है कि पति के इस स्वामित्व में पत्नी भी अधिकृत है जो इस मर्द के अधिकार के अतिरिक्त है न कि मर्द अधिकार विहीन हो जाता है।

''तलाक का अधिकार सौंपना------यद्यपि तलाक देने का अधिकार वास्तव में पति को है, वह इस अधिकार को पत्नी को सौंप सकता है या अन्य तीसरे व्यक्ति को पूर्ण रूप से अथव कुछ शर्त के साथ। जिस व्यक्ति को यह अधिकार सौंपा जायेगा वह तलाक दे सकता है। सौंपा गया अस्थायी अधिकार वापस नहीं लिया जा सकता और स्थायी रूप से सौंपा गया तलाक का अधिकार वापस लिया जा सकता है।

पाकिस्तान-------'काबीन नामा' के द्वारा पत्नी को तलाक देने का अधिकार दिया गया और तत्काल महर अदा न की गई हो तो तलाक देना माँग के बाद जन नीति के विरुद्ध नहीं है और साथ साथ मुहम्मडन लॉ का कानून

भी ऐसे ही है और इस तरह के तलाक को तफ्वीज़ का तलाक कहा जाता है।'' (Mulla's Principle of Mohammadan Law P.—333)

पत्नी की तरफ से तलाक के अधिकार की शर्त लगाना ––––––एक समझौता किया जाता है चाहे वह निकाह से पहले हो अथवा बाद में हो जिसमें पत्नी को स्वयं तलाक द्वारा आजादी की व्यवस्था होती है और विशेष परिस्थितियों में यह वैध है यदि स्थिति तर्क संगत हो और मुहम्मडन लॉ की नीति के विरुद्ध न हो। इस स्थिति में ऐसा समझौता किया जाता है कि पत्नी किसी आकस्मिक घटना के समय अपने उस अधिकार का प्रयोग कर सकती है और यह तलाक कानूनन वैसे ही प्रभावशाली होगा जैसे पति द्वारा तलाक देने पर प्रभावशाली होता है। (Mulla's Muhammadan Law P.—333)

पति पत्नी के बीच ऐसा समझौता जिसमें पति पत्नी को तलाक का अधिकार इस शर्त के साथ दे कि वह उस अधिकार का प्रयोग उस समय कर सकेगी जब पति, पत्नी की अनुमति के बिना दूसरा निकाह करे। (Mulla's Muhammadan Law P.—334)

मौलाना अशरफ अली थानवी और दूसरे उलमा द्वारा लिखित 'अल-हीलतु-नाजिजा' में तलाक का अधिकार सौंपने को फिक्ह हनफी में वैध करार दिया गया है और 'काबीन नामा'' का एक नमूना भी प्रस्तुत किया गया है। कुछ चुने हुए उदाहरण: (ضـــروری اقتبـاســات) इस रतह का 'काबीन नामा' लिखवाना (जिसमें तलाक का अधिकार औरत को सौंप दिया गया हो) और जरूरत पड़ने पर उसका प्रयोग करना शरीअत में जायज है (और इस अधिकार सौंपने को तफ़्वीज़-ए-तलाक कहते हैं)

''इसकी तीनों स्थितियाँ वैध हैं चाहे निकाह से पहले लिखवाया जाये चाहे निकाह के समय लिखवा लिया जाये चाहे बाद में लिखिवाया जाये।'' 'अल-हीलतुन्-जाजिजा पृ.-30-31)

साथ ही यह सलाह दी गई है कि:

''चूँकि औरत अल्पबुद्धि वाली होती है इसलिए पूरी तरह से तलाक का अधिकार उसे सौंप देना खतरे से खाली नहीं है तो उचित यह है कि अधिकार

सौंपने में कुछ बंदिशें (Restrictions) लगाई जायें जिससे वह खतरा न रहे। अदाहरण स्वरूप निकाह के समय औरत की तरफ से या उसका अभिावक या वकील, (यानी काजी निकाह ख्वाँ) यूँ कहे कि मैंने अपने आपको या मुसम्मात फलाँ को तुम्हारे निकाह में अमुक महर के बदल ---- रू.----प्रचलित मुद्रा के अनुसार इस शर्त पर दिया जाता है कि जिस समय उससे तुम को कठोर कष्ट पहुँचे जिसको अमुक अमुक लोगों में से कम से कम दो व्यक्ति स्वीकार कर लें इस जगह मुनासिब है कि कम से कम दस व्यक्तियों के नाम दोनों पक्षों की सहमति से निर्धारित कर दिया जाये) तो इसके बाद हर समय मामला मेरे या उसके अधिकार में होगा कि मैं स्वयं को एक तलाके बाइन (अलग कर देने वाला) देकर उस निकाह से अलगाव कर लिया जाये। इस स्थिति में तलाक का अधिकार औरत के हाथ में उस समय आयेगा जब कि निर्धारित व्यक्तियों में से कम से कम दो आदमी उस बात को स्वीकार कर लें कि कष्ट कठोर है।'' (पृ.-35)

इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट कर दिया गया है:

''पति को तलाक का अधिकार सौंपने के बाद इसे वापस लेने का अधिकार नहीं रहता, बल्कि तलाक का अधिकार सौंपने के बाद औरत तलाक की मालकिन (स्वामिनी) बन जाती है।'' (पृ.-37)

''अगर पति ने पत्नी से कहा जब चाहो अपने को तलाक दे दो तो उसको अधिकार है कि उस बैठक में या उसके बाद अपने को तलाक दे दे।''

विद्वानों और फुकहा के यह स्वष्टीकरण तलाक का अधिकार सौंपने को वैध करार देते हैं लेकिन शोध के दृष्टिकोण से देखा जाये तो इसके लिए कोई प्रबल तर्क नहीं है। वास्तव में कुरआन व सुन्नत में इसके लिए कोई तर्क नहीं है और जिस आयत से इसके वैधता पर तर्क दिया जाता है इससे यह सिद्ध नहीं होता है तर्क का आधार आयत-ए-तख्ईर है जिसमें नबी (सल्ल.) के बारे में इरशाद (कहा गया) हुआ है वह निम्नलिखित है।

''ऐ नबी अपनी पत्नियों से कह दो कि अगर तुम दुनिया के जीवन और उसका श्रृंगार व सजावट चाहती हो तो आओ तुम्हें कुछ दे दिलाकर भले तरीके

से विदा कर दूँ।'' (सूरः अहजाब-28)

फुक़हा ने इस तख्ईर (भलाई चुनना) को तलाक का अधिकार सौंपने जैसा जाना है अर्थात इस स्थिति में औरत को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह स्वयं अपने ऊपर तलाक लागू कर ले। जब कि इस आयत में इसके लिए कोई तर्क नहीं है। आयत में नबी (सल्ल.) से कहा गया है कि आप अपनी पत्नियों से पूछ लें कि वह दुनिया की श्रृंगार व सजावट चाहती है या अल्लाह और उसके रसूल को। अगर दुनिया के श्रृंगार व सजावट को चाहती है तो अच्छे तरीके से उनको विदा कर दिया जाए अर्थात उनकी इच्छा जानने के बाद उनको तलाक दे दें। इससे यह कहाँ सिद्ध होगा कि अगर आपकी पत्नियाँ दुनिया का श्रृंगार व सजावट चाहती हैं तो स्वयं तलाक लागू हो जाता है आयत में तलाक का शब्द नहीं प्रयोग हुआ है और उसके शब्द ये हैं:اُسَرِحکن سراحاً جمیلا उसर्रेहकुन्ना सराहन् जमीला अर्थात मैं भले तरीके से तुम सबको विदा कर हूँ। यह स्पष्ट है कि आपके अलग करने से वह अलग हो जाऐं। लेकिन नबी (सल्ल.) द्वारा अपनी पत्नियों को ये विकल्प देने को तलाक का अधिकार सौंपने जैसा जानना ठीक नहीं है।

हाफिज इब्ने हजर फत्हुल बारी में लिखते है:

लेकिन आयत-ए-तखईर (विकल्प देने वाली आयत) का अर्थ यह है कि मात्र विकल्प चुनने के अधिकार से तलाक का अधिकार नहीं प्राप्त होता बल्कि पति के तलाक देने से ही तलाक लागू हो सकती है क्योंकि आयत में कहा गया है ''आओ तुम्हें कुछ दे दिलाकर विदा कर दूँ जिसका अर्थ यह है कि पत्नियों के इस निर्णय के बाद (अगर वह दुनिया की सजावट को प्राथमिकता देती हैं) उन्हें विदा कर दिया जाये, और शब्द का तर्क भावार्थ के तर्क पर भारी है।

इसलिए तलाक का अधिकार सौंपने की वैधता आयत-ए-तखईर (भला विकल्प चुने की स्वतन्त्रता वाली आयत) से सिद्ध नहीं होता।

कुरआन ने तलाक का अधिकार मर्द को ही दिया है जैसा कि इरशाद हुआ है الذی بیدہ عقدۃ النکاحअल्लजी बियदेहि उकदतुन्निकाह मर्द जिसके हाथ में निकाह की गाँठ है।

यह आयत इस बात पर दलील है कि निकाह की गाँठ खोलना अर्थात तलाक को वैध ठहराया गया है। जहाँ इस सन्देह को भी व्यक्त किया गया है कि---

''चूँकि औरत अल्पबुद्धि वाली है इसलिए तलाक का पूर्ण रूप से अधिकार उसके हाथ में दे देना खतरे से खाली नहीं है।'' (अल-हीलतुन-नाज़िज़ा, पृ.-32)

और इस खतरे से बचने की सूरत यह बताई गई है कि 'काबीन नामा' में दस व्यक्तियों के नाम प्रस्तुत किये जायें जिसमें कम से कम दो व्यक्ति इस बात से सहमत हों कि औरत को मर्द से भारी कष्ट पहुँच रहा है तो औरत अपने ऊपर तलाक लागू कर सकती है। यह काम अमली तौर पर सहज नहीं है। अगर दो व्यक्ति औरत की बात से सहमत हों और तीन असहमत हों तो इस स्थिति में क्या होगा? और यह दोनों व्यक्ति केवल औरत की ही बात सुनेंगे या मर्द की भी। अगर केवल औरत की बात सुनेंगे तो निर्णय एक तरफा होगा और यदि मर्द की सुनेंगे तो परस्पर विरोधी बयानों की दशा में गवाह की आवश्यकता होगी। तो यह समस्या दारुल क़ज़ा को बन जायेगी और ऐसी स्थिति में यह शर्त निरर्थक होगी।

इसके अतिरिक्त हमारी निगाह इस तरफ भी होनी चाहिए कि मौजूदा दौर में जो मुसलमान पारिवारिक कानून से सन्तुष्ट नही हैं और उसमें परिवर्तन चाहते हैं और यह प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं कि निकाह के समय काबीन नामा तैय्यार किया जाये, जिसमें मर्द पहले से ही यह अधिकार दे दे कि अमुक-अमुक (फलाँ) स्थिति में औरत अपने ऊपर तलाक लागू कर सकती है। तलाक के अधिकार सौंपने की इस उपाय (Device) का प्रयोग करके वह मर्द-औरत में समता का सिद्धान्त स्थापित करना चाहते हैं इस लिए इसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता।

निकाह मर्द और औरत के बीच सद्भावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का पवित्र अवसर होता है और यह सम्बन्ध ऐसी स्थिति में सद्भावपूर्ण तभी होगा जब आपसी विश्वास का वातावरण हो। ऐसे अवसर पर मतभेद और तलाक की कल्पना दोनों के मन पर बुरा प्रभाव डालेगा। और औरत की तरफ से कोई शर्त

आयेगी तो मर्द भी अपनी शर्त रखेगा। इस प्रकार दोनों के दिमाग़ पर खराब प्रभाव पड़ेंगे। वास्तव में काबीन नामा की कल्पना ही आपसी विश्वास को ठेस पहुँचाती है और जो भलाइयाँ निकाह में हैं उनके अनुकूल नहीं है।

अगर पूर्ववर्ती फकीहों (متـــقـــدميـــن) ने तलाक का अधिकार सौंपने की अनुमति दी थी तो उसकी हैसियत फिक्ही उप शाखा (Incomplete Jurisprudential Part)की थी जिससे उस वक्त के हालात में कोई बड़ी समस्या नहीं पैदा होती थी लेकिन मौजूदा स्थिति में उसको पूर्ण रूप से कानूनी रूप देकर अनुमति देना किसी तरह ठीक नहीं है। इस्लाम में अज्ल गर्भ रोकने के लिए वीर्य निकलने से पहले अलग होना) की अनुमति आंशिक रूप से है उसे पूर्ण रूप देकर परिवार नियोजन और जन संख्या घटाने की योजना को बढ़ावा देने के लिए वैध करार दिया जा सकता है? यदि नहीं तो तलाक का अधिकार सौंपने के बारे में भी एक फिक्ही अंश को पूर्ण कानून का रूप दे देना और 'काबीन नामा' में उसे लिखवाने पर नहीं उकसाया जा सकता है।

प्रश्न-1 तलाक़ की स्थिति में अतिरिक्त महर की शर्तः

अगर निकाह के समय इस तरह महर निर्धारित किया जाये कि यदि पति ने पत्नी को तलाक़ दी तो औरत का महर 20 हजार और तलाक न दी तो महर दस हजार' तो इस तरह महर निर्धारित करना अवैध होगा। क्योंकि यह तरीका प्रचलन के विरुद्ध है। जो कुरआन व सुन्नत से सिद्ध है और जिस पर सहाबा किराम अमल करते थे। मानो यह जुर्माना (दण्ड) है और यह इस स्थिति में खुला अत्याचार है जब मर्द ने औरत की अति से तंग आकर उसे तलाक दी हो और एक बैठक में तीन तलाक का मसला ऐसा है कि अगर वह शरीअत विरुद्ध है तो तीन तलाक का लागू होना भी शरीअत विरुद्ध है अतः इसलिए संकोच की कोई आवश्यकता नहीं है जो ऊपर दिख रही है।

इमाम बुखारी ने किताबुश्शरायत (शर्त का अध्याय) एक विषय यह स्थापित किया है 'निकाह के समय महर में शर्तें रखना।' लेकिन इन शर्तों का अभिप्राय प्रचलित शर्तें हैं जैसे महर का भुगतान कब और कैसे किया जायेगा न

कि महर में किसी शर्त के आधार पर कमी अथवा ज़्यादती की जायेगी।

कुरआन में औरतों का महर खुशी खुशी अदा करने का आदेश दिया गया है।

''औरतों को उनका महर खुशी-खुशी उपहार के तौर पर दिया करो।' (सूरः निसा-3)

और महर में जब दण्ड की स्थिति आ जाये तो खुशी खुशी उपहार के तौर पर देने की स्थिति नहीं रह जाती इसलिए अतिरिक्त महर की शर्त ठीक नहीं है। हनफी दृष्टिकोण से इमाम जफर (زفـر) ने दोनों शर्तों को गलत बताया है जिसमें औरत अगर अपने निवास स्थान पर रहेगी तो एक हजार और बाहर ले जाने की अवस्था में महर दो हजार निर्धारित कर दिया गया हो।

इमाम जफर (زفـر) रह. फरमाने है कि दोनों शर्तें गलत हैं और औरत को महर मिस्ल मिलेगा न तो एक हजार से कम और न दो हजार से अधिक।
हमारे समाज में तलाक का जो दुरुपयोग हो रहा है उसे रोकने के लिए कोई ऐसा उपाय अपनाना सही न होगा जिससे तलाक पर ही बाधा आती हो या इस बात को ध्यान न देते हुए कि त़लाक़ आवश्यक भी या नहीं, गुनाहगार बताकर दण्ड लगाती हो, हाँ अगर अदालत या दारुल-क़ज़ा औरत के बयान से संतुष्ट हो कि पति ने उसको अकारण तलाक दी है तो उस पर तलाक दी हुई औरत के लिए घर की व्यवस्था करना और कुछ समय के लिए जीविका देने की जिम्मेदारी डाली जा सकती है। क्योंकि मौजूदा परिस्थितियों में कोई उचित उपाय अपनाना अनिवार्य हो गया है इस सिलसिले में सीरिया (शाम) के निकाह के कानून से मदद ली जा सकती है, जिसमें आक्रामक तलाक के बारे में कहा गया है।

धारा-117--अगर पति पत्नी को तलाक दे और क़ाज़ी के सामने स्पष्ट हो जाये कि पति ने बिना किसी उचित कारण के तलाक़ दी है जिसमें उसने अत्याचार किया है और जिसके कारण पत्नी को गरीबी और भुखमरी का सामना करना पड़ेगा तो क़ाज़ी के लिए यह वैध होगा कि वह जिस स्तर का अत्याचार हो उसी की तुलना में पति को आदेश दे कि वह पत्नी को हरजाना दे जो उस स्तर की औरतों के एक वर्ष की जीविका से अधिक न हो मगर इसमें इद्दत की

जीविका सम्मिलित नहीं होगी, और काजी को यह अधिकार होगा कि परिस्थिति को देखते हुए हरजाना एक साथ अथवा मासिक भुगतान का आदेश दे।

शेख अब्दुल वहाब का दृष्टिकोण इसके विपरीत है शरीअत के शब्दों से स्पष्ट होता है कि कोई व्यक्ति बिना कारण तलाक दे तो शरीअत की दृष्टि से तलाक हो जायेगी लेकिन वह व्यक्ति अपराधी होगा। उसका अपराधी होना सिद्ध करता है कि उसने अपने अधिकार का गलत प्रयोग किया है। शरीअत के कानून के अनुसार अधिकार का प्रयोग नहीं किया है और वह अपराधी इसी लिए है कि उसने अपने अधिकार का प्रयाग गलत तरीके से किया है तो हर तलाक देने वाला तलाक देने के आधार पर शरीअत की दृष्टि में अपराधी है इसलिए कि उसने उस अधिकार का गलत प्रयोग किया है। इस लिए जब तलाक दी हुई औरत को इससे हानि पहुँचे तो हानि का हर्जाना अनिवार्य है लेकिन अगर उसने छुटकारा पाने की जरूरत के आधार पर तलाक दिया हो या तलाक दी हुई औरत को कोई हानि न पहुँची हो तो फिर हरजाना नहीं देना होगा। (अल-अहवालुश्शख्सीया-डा. अहमद अल-गुन्दूर, पृ.-352)

औरत मिस्र के एक न्यायालय ने एक मामले में जिसमें औरत ने दावा किया था कि उसे मदरसे (School) की नौकरी निकाह के कारण छोड़नी पड़ी और तीन महीने गुजरे थे कि पति ने तलाक दे दी जिसके कारण उसे काफी हानि पहुँची। यह निर्धारित किया गया कि पति अपनी तलाक दी हुई बीवी को एक हजार गिन्नी मुआवजा में दे। (उपरोक्त किताब पृ.-357)

प्रश्न-२, दूसरा निकाह करने पर अतिरिक्त महर?

उत्तर, अगर निकाह के समय इस तरह महर तय किया जाये कि पति ने इस पत्नी की मौजूदगी में किसी दूसरी औरत से निकाह किया तो उसका महर तीस हजार होगा। और उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं किया तो उसका महर 15 पन्द्रह हजार होगा। तो ऐसी स्थिति में शरीअत में दोनों शर्तें वैध और इस पर अपल करना अनिवार्य होगा अथवा नहीं?

दोनों शर्तें शरीअत में अवैध हैं और उन पर अमल अनिवार्य नहीं है। क्योंकि

दूसरा निकाह करना कोई अपराध नहीं है जिससे पति को उसका दण्ड अदा करना अनिवार्य है। अगर पति उस शर्त को पूरा करता है तो अपनी पहली बीवी को दण्ड क्यों अदा करे? महर में ऐसी शर्तों से वह खूबियाँ समाप्त हो जाती हैं जो प्रश्न 1 के उत्तर में ऊपर बयान की गई हैं।

प्रश्न-3, औरत को नौकरी से रोकने की शर्त

औरत यदि निकाह के समय यह शर्त रखती है कि पति उसे नौकरी से नहीं रोकेगा और भविष्य में उसे कोई उचित नौकरी मिल जाती है तो उसे नौकरी करने से नहीं रोकेगा और इस शर्त को पति निकाह के समय स्वीकार कर लेता है तो इस शर्त का शरीअत में क्या महत्व है? वर्तमान स्थिति में मिल्लत की जरूरतों को देखते हुए इस बात की आवश्यकता है कि औरतों से शैक्षिक चिकित्सकीय सेवाओं और दूसरी ऐसी सेवाएं जो औरतों के लिए विशेष है वह औरतों से ही ली जाएं। लेकिन व्यक्तिगत स्थिति ऐसी भी हो सकती है कि औरत नौकरी करते हुए घरेलू जिम्मेदारियाँ पूरा करने के लिए कोई उचित व्यवस्था कर सकती है। इसलिए अगर पति ने नौकरी की शर्त को स्वीकार कर लिया है तो उसका पालन करना अनिवार्य है। लेकिन अगर नौकरी में शरीअत की लगाई गई पाबन्दियों पर अमल न हो सके या पति और बच्चों को कष्ट होता हो तो ऐसी शर्त का पालन करना अनिवार्य नहीं है।

अगर पति शर्तों को स्वीकार करने के बाद पत्नी को नौकरी छोड़ने का आदेश देता है या नई नौकरी से रोकता है तो वह अपना मामला क़ाज़ी के सामने प्रस्तुत कर सकती है। और काजी परिस्थितियों का अध्ययन करने के बाद उचित आदेश दे सकता है।

क्या निकाह में शर्त लगाना शरीअत में पसंदीदा है?

निकाह में शर्तें लगाना कोई सराहनीय कार्य नहीं है जिसके लिए लोगों को प्रेरित किया जाये क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि जिस शर्त को पति ने स्वीकार किया है वह उसका पालन कर सकेगा और परिस्थितियाँ उसमें बाधक

न होंगी। अगर परिस्थिति अनुकूल नहीं हुई तो दोनों के बीच मतभेद हो जायेगा। इसलिए इमाम मालिक ने शर्तों को घृणित (मकरूह) कहा है।

शर्तें आम तौर से इमाम मालिक (रह.) की दृष्टि में घृणित है और वह लोगों को शर्तों के साथ निकाह करने से मना करते थे। (अल अहवालुश्शख्सीया- डा. अहमद गुन्दूर, पृ.-729)

वर्तमान समाज में औरतों को वह स्थान नहीं प्राप्त हो रहा है जो इस्लाम उन्हें देना चाहता है। और उनके अधिकारों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। जिस परिवार में पुराना ढ़ाँचा है वहाँ आमतौर से उन्हें घुटन की जिन्दगी जीने के लिए बाध्य किया जाता है। और जहाँ औरतें पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगी हुई हैं वहाँ न वह पति का सम्मान करती हैं और न शरीअत के कानून का। इस लिए समाज में परिवारिक जीवन से सम्बन्धित जो समस्यायें पैदा हो रही हैं उनका हल निकाहों में शर्तें रखना या 'काबीन नामा' लिखने लिखवाने में नहीं है। बल्कि ऐसी उपाय ढूढ़ने की जरूरत है जिसमें एक तरफ उनमें अल्लाह के दरबार में जवाब देही का एहसास पैदा हो, उनमें एक दूसरे के अधिकार और दायित्व का एहसास हो। आमतौर पर जिन चीजों से मतभेद पैदा होता है उनसे बचने के लिए प्रस्ताव किया जाये और शरई अदालतों की स्थापना जितना सम्भव हो किया जाये और जिन औरतों बिना कारण तलाक से हानि पहुँच रही हो उनको उनके पतियों से हरजाना दिलवाने का अदालत और काजी को अधिकार दिया जाये। इसके लिए कानून बनाने का अनुमोदन किया जाये। इस तरह के ठोस उपाय के बिना समाज में सुधार का काम प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं हो सकता है और न न्याय की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

☆☆☆

निकाह में शर्त लगाने का शरीअत का आदेश

मुफ़्ती नसीम अहमद क़ासमी

इस्लाम की नजर में निकाह मर्द और औरत के बीच होने वाला एक आदरणीय समझौता है जिसके माध्यम से दो अनजाने मर्द औरत एक साथ प्यार और मुहब्बत, लगाव और आपसी विश्वास और शान्ति के वातावरण में जीवन व्यतीत करते हैं। इनके आपसी सम्बन्ध को अल्लाह की निशानियों में से एक निशानी कहा गया है। पत्नी को पति के लिए शान्ति का माध्यम करार दिया है। निकाह के बाद पति पत्नी हलाल तरीके से अपनी काम भावनाओं को तृप्त करते हैं और इनके सम्बन्ध से जन्म और नस्ल का सिलसिला जारी होता है जो मानव नस्ल को जारी रखने का एक मात्र माध्यम है। इस्लाम की दृष्टि में निकाह मात्र आनन्द और भोग विलास का साधन नहीं है बल्कि उसका सबसे बड़ा उद्देश्य पति पत्नी के सतीत्व की सुरक्षा है। कुरआन करीम में ''मोहसिनीन गैर मुसाफिहीन (सदाचारी और व्यभिचारी नहीं) शब्दों में निकाह के बन्धन को मजबूत और अटूट देखना चाहता है इसे आकस्मिक नहीं देखना चाहता।

इस्लाम में (वादा) वचन और वचन बद्धता को बहुत महत्व दिया गया है। कुरआन में वचन पूरा करने को मोमिन (ईमान वालों) का विशेष लक्षण बताया गया है। कुरआन में ईमान वालों को सम्बोधित किया गया है

''ऐ ईमान वालो दिये गये वचन (वादों) को पूरा करो''

निकाह में ऐसी शर्तें लगाना जिनसे निकाह के बन्धन में मजबूती आये निकाह के रिश्ते के बिल्कुल अनुकूल है और ऐसी शर्तों को पूरा करने का आदेश स्वयं नबी करीम (सल्ल.) ने फरमाया है। बुखारी शरीफ में है:

''तुम्हारे लिए उन शर्तों को पूरा करना अधिक आवश्यक है जिनके द्वारा

तुम औरतों को अपने लिए हलाल करते हो।''

निकाह के बन्धन में पति-पत्नी की ओर से ऐसी शर्तें लगाना जिनके लगाने के कारण दोनों पक्षों में से किसी को लाभ पहुँचता हो और यह शर्तें ईजाब व कबूल (अनुमति व स्वीकृति) से ठीक पहले हो। (निकाह हो जाने के बाद लगाई गई शर्तों का कोई महत्व नहीं) इस सिलसिले में इमामों के मतानुसार निम्नलिखित वर्णन हैं:

१- फ़िक़्ह हनफ़ी में शर्तों की किस्में और उनके आदेश:

हनफी फुकहा के कथन और उनकी किताबों के अध्ययन से शर्तों की निम्नलिखित स्थितियाँ हैं।

(i) निकाह में पति पत्नी का ऐसी शर्तों पर सहमत होना जो इस्लामी शरीअत के दृष्टिकोण से सही और निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हों और शरीअत के आदेश के विरुद्ध न हों। ऐसी शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है जैसे पत्नी का निकाह के समय यह शर्त लगाना कि पति अपने घर वालों से अलग निवास दे जिसमें वह अपने सामान को सुरक्षित रख सके या पति सफर में अपने साथ ले जाने के लिए पत्नी को उसके घर वालों को अनुमति के बिना मजबूर नहीं करेगा या, यह कि वह अपना निकाह महर मिस्ल पर करेगी। इन तमाम स्थितियों में शर्तों का पूरा करना वैध होगा।

(ii) ऐसी शर्तें तय करना जिनके माध्यम से किसी पक्ष पर कोई नई जिम्मेदारी नहीं आती बल्कि स्वयं निकाह से जो जिम्मेदारी किसी पक्ष पर आती है उसी को निकाह के समय बयान कर दिया गया हो जैसे औरत का निकाह के समय यह शर्त लगाना कि पति उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगा या, पत्नी का यह शर्त लगाना कि उसकी जीविका पति को देना होगा।

ऐसी शर्तों को पूरा करना इस्लामी शरीअत का उद्देश्य है। शर्तों के माध्यम से उसमें मजबूती पैदा कर दी गई है ऐसी शर्तों को पूरा करना भी अनिवार्य है।

(iii) बुरी शर्तें निर्धारित करना ठीक नहीं है। बुरी शर्तें वह हैं जो निकाह के अनुकूल न हों और शरीअत में उनकी अनुमति न हो। ऐसी शर्तों में आदेश यह है कि मात्र शर्तें निरस्त होंगी, निकाह सही रहेगा, जैसे औरत का अपनी होने वाली सौत के तलाक की शर्त लगाना। (रद्दुल मुख्तार, भाग-2, पृ.-345)

२- शर्तों के सम्बन्ध में मालिकी दृष्टिकोण:

मालिकी फिक्ह के अनुसार शर्त निर्धारण की शक्लें है:

1. सही शर्तें निर्धारित करना
2. ग़लत शर्तें निर्धारित करना

सही शर्तें दो तरह की हैं:

(अ) घृणित (ब) अघृणित

1. सही लेकिन अघृणित शर्तों का तात्पर्य उन शर्तों से है जो निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हों जैसे पत्नी द्वारा जीविका पाने की शर्त लगाना या यह शर्त लगाना कि पत्नी अपने पति का आज्ञा पालन करेगी। या पति यह शर्त लगाये कि पत्नी बिना उसकी अनुमति के घर से बाहर नहीं निकलेगी या यह शर्त लगाये कि औरत के अन्दर वह कमियाँ भी नहीं होनी चाहिए जिनके द्वारा निकाह निरस्त करना जायज नहीं होता जैसे अन्धापन, गंजापन, बहरापन इत्यादि।
2. सही और घृणित शर्तों का तात्पर्य उन शर्तों से है निकाह से सम्बन्धित होती हैं। इन शर्तों का उद्देश्य पति के अधिकार सीमित करना होता है जैसे पत्नी को शहर से बाहर न ले जाने की शत, सफर पर न ले जाने की शर्त और पत्नी के होते हुए दूसरा निकाह न करने की शर्त।

(3) ग़लत शर्तों का तात्पर्य उन शर्तों से है जो निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध और प्रतिकूल हों। एक पत्नी का यह शर्त लगाना कि पति उसके और उसकी सौत के बीच पारी निर्धारित नहीं करेगा या निकाह के समय औरत का यह शर्त लगाना कि उसकी जीविका पति के पिता या अभिभावक (वली) के

ऊपर होगा। (बदायतुल-मुज्तहिद, भाग-2, पृ.-85)

३-शर्तों के सम्बन्ध में शाफ़ई मतः

शाफई फिक्ह के अनुसार शर्तें दो प्रकार की है

1. सही शर्तें 2. गलत शर्तें

1. सही शर्तों का तात्पर्य उन शर्तों से है जो निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हों जैसे औरत का यह शर्त लगाना कि एक पत्नी के होते हुए पति दूसरा निकाह नही करेगा। यह शर्त लगाना कि औरत के लिए 'जीविका' नहीं होगी। पत्नी का यह शर्त लगाना कि पति उसे श्हर से नहीं हटाएगा। इस प्रकार की शर्तों का आदेश यह है कि इन तमाम स्थितियों में शरीअत के अनुसार निकाह सही होगा और गलत शर्तें निरस्त मानी जायेंगी। लेकिन निकाह में किसी पक्ष की ओर से ऐसी शर्त लगाई जाये जो निकाह के मूल उद्देश्य को नष्ट करने वाली हो तो निकाह वैध नहीं होगा। जैसे यह शर्त लगाना कि पति अपनी पत्नी से शारीरिक सम्बन्ध नहीं रखेगा या यह शर्त कि वर्ष में मात्र एक बार शारीरिक सम्बन्ध रखेगा या, यह शर्त कि पति उसे तलाक दे देगा इत्यादि।

शाफई फिक्ह की प्रसिद्ध किताब 'जादुल मोहताज बि शरहिल मिन्हाज' में है।

निकाह में यह शर्त कि पत्नी चाहे तो निकाह में रहे या तलाक ले ले तो इस तरह विकल्प से निकाह ही निरस्त हो जाता है। और महर के विकल्प की शर्त लगाने से सही दृष्टिकोण के अनुसार महर जायज नहीं होगा हाँ निकाह हो जायेगा---अगर वह शर्तें निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध हों और निकाह के मूल उद्देश्य में बाधक हों जैसे यह शर्त कि एक पत्नी की मौजूदगी में वह दूसरा निकाह नहीं करेगा या औरत को जीविका पाने का अधिकार नहीं होगा तो इन तमाम स्थितियों में महर भी वैध होगा और निकाह भी वैध होगा और केवल शर्तें ही गलत और निरस्त मानी जायेंगी। और यदि यह शर्त उद्देश्य में बाधक हों जैसे यह शर्तें लगाना कि औरत से पति शारीरिक सम्बन्ध नहीं रखेगा या पति उसे

तलाक दे देगा तो ऐसी स्थिति में निकाह निरस्त हो जाएगा। (जादुल-मोहताज-बि-शरहिल-मिन्हाज, भाग-3, पृ.-288)

4. हम्बली मत में शर्तें और उनके आदेश

४-हम्बली मत से शर्त की ती क़िस्में हैं:

1. सही शर्तें वह हैं जो निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हों, या वह जो निकाह के उद्देश्य के प्रतिकूल हो, मगर इन शर्तों के लगाने में पति पत्नी में से किसी को लाभ हो और इस्लामी शरीअत में इस तरह की शर्तें लगाने से मना न किया गया हो, और न वह शर्तें निकाह के उद्देश्य में बाधक हों जैसे पत्नी का यह शर्त लगाना कि पति उसकी जीविका प्रदान करेगा या, यह कि वह उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगा, यह कि उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं करेगा, या यह कि पति उसे उसके मैके या शहर से बाहर नहीं ले जायेगा या, उसे अपने साथ लम्बी यात्रा पर जाने के लिए मजबूर नहीं करेगा। या मर्द की तरफ से यह शर्त की पत्नी सुन्दर हो, शिक्षित हो, या यह कि उसमें वह कमी न हो जिसके कारण निकाह निरस्त करने का अधिकार न हो जैसे अंधापन, गूंगापन, बहरापन।

इस तरह की शर्तों का आदेश यह है कि इन शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है, इसकी दलील यह है कि नबी (सल्ल.) का इरशाद है:

''जिन शर्तों के माध्यम से तुमने औरतों को हलाल किया है पूरा करने की सबसे अधिक हकदार हैं।'' (नीलुल-अवतार, भाग-6, पृ.-126)

और जनाब रसूलुल्लाह (सल्ल.) का इरशाद है:

''मुसलमानों पर शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है।'' (सुबुलु-स्सलाम, भाग-3, पृ.-59)

2. गलत शर्तों की दो किस्में हैं।

1. वह शर्तें जो निकाह के उद्देश्यों के विपरीत हों, जैसे मर्द का निकाह के समय यह शर्त लगाना कि औरत महर पाने की हक़दार न होगी या यह शर्त लगाना कि पति पर उसकी जीविका अनिवार्य नहीं होगी। या पत्नी यह शर्त

लगाये कि पति उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध नहीं रखेगा या अज्ल (वीर्य उत्क्षेपण से पहले जोड़े से अलग होना) करेगा, या उसके लिए उसके सौतन से छोटी पारी तय करेगा या, औरत अपना खर्च स्वयं वहन करेगी या, औरत यह शर्त लगाये कि पति उसकी सौतन को तलाक देगा। इस प्रकार की शर्तों का आदेश यह है कि शर्तें निरस्त होंगी और निकाह सही रहेगा।

2. दूसरी किस्म की वह शर्तें हैं जिनसे निकाह निरस्त हो जाता है, जैसे कुछ समय तक का निकाह, मुताअ, या यह शर्त लगाना कि पति अपनी पत्नी को निर्धारित समय के बाद तलाक दे देगा। इस तरह की शर्तों का आदेश यह कि शर्तें भी निरस्त होंगी और इनके कारण निकाह भी निरस्त हो जायेगा।

प्रश्नावली का उत्तर

1. ऐसी शर्तें जिनके कारण निकाह के दोनों पक्षों में से किसी पक्ष पर कोई नई जिम्मेदारी नहीं आती हो बल्कि स्वयं निकाह के समझौते से जो जिम्मेदारी किसी पक्ष पर लागू होती हो उसी को शर्त की तरह निकाह के समय बयान कर दिया गया हो जैसे पत्नी का यह शर्त लगाना कि उसकी जीविका पति पर अनिवार्य होगी या पति उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगा। ऐसी शर्तों के वैध होने के बारे में हजरत इमाम अबू हनीफा, इमाम मालिक, इमाम मुहम्मद बिन इद्रीस, इमाम शाफई और इमाम अहमद बिन हम्बल के बीच सर्व सम्मति है। ऐसी शर्तों का पूरी करना दोनों पक्षों पर अनिवार्य है अल्लामा सिद्दीक बिन हसन कन्नौजी ने अपनी किताब ''अर्रौज़तुल-निद्दीया'' में लिखा है:

पति पर पत्नी के साथ लगाई गई शर्तों का पालन अनिवार्य है अक्बा बिन आमिर की हदीस है 'रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने फरमाया कि वह शर्तें पूरा करना सबसे अधिक आवश्यक हैं जिनके द्वारा तुम औरतों को हलाल करते हो, वह हदीस सहीहैन में है और सहीहैन के अतिरिक्त दूसरी हदीस की किताबों में भी

है, और यही कथन अधिकांश उलमा का भी है (अरौंज़तुल-निद्दीया, भाग-3, पृ.-30)

2. निकाह के समय किसी पक्ष का ऐसी शर्त लगाना जिसका उद्देश्य निकाह के पश्चात आने वाली जिम्मेदारियों से बचना हो जैसे पति निकाह के समय यह शर्त लगाये कि पत्नी की जीविका उस पर अनिवार्य नहीं होगी। तो ऐसी शर्तों पर चारों इमामों में सर्वसम्मति है कि ऐसी शर्तें गलत हैं लेकिन हनफी फिक्ह के अनुसार ऐसी शर्तें निर्धारित करने की स्थिति में केवल शर्तें गलत होंगी और निकाह सही रहेगा। शाफई फिक्ह में यह विस्तार है--

फासिद शर्तों का तात्पर्य उन शर्तों से है जिनका शरीअत ने आदेश नहीं दिया है और वह शर्तें निकाह के उद्देश्य के विपरीत हों, जैसे औरत का शर्त लगाना कि उसकी मौजूदगी में पति दूसरा निकाह नहीं करेगा या यह कि दूसरी पत्नी को जीविका नहीं देगा। इस प्रकार की शर्तों के बारे में यह आदेश है कि निकाह सही हो जायेगा और शर्त गलत हो जायेगी। लेकिन यदि ऐसी शर्त लगाये जो निकाह के मूल उद्देश्य में बाधक हो तो ऐसी शर्त की स्थिति में निकाह ही वैध नहीं होगा जैसे यह शर्त लगाना कि पति उससे शारीरिक सम्बन्ध नहीं रखेगा या वर्ष में एक बार शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करेगा, यह शर्त लगाना कि पति अपनी पत्नी को तलाक दे देगा। ऐसी शर्त निर्धारित करने पर शाफई मत के अनुसार निकाह वैध नहीं होगा। शाफई मत की प्रसिद्ध किताब (जादुल-मोहताज-बि-शरहिल-मिन्हाज, भाग-3, पृ.-228)

(3) तीसरी किस्म की शर्त लगाना जिसके फलस्वरूप किसी पक्ष को ऐसा अधिकार प्राप्त हो जाए जो बिना शर्त वाले निकाह में प्राप्त नहीं होता है और दूसरे पक्ष पर ऐसी पाबन्दी और जिम्मेदारी आ जाये जो बिना शर्त के निकाह में नहीं आता है जैसे औरत का यह शर्त लगाना कि मर्द उसकी मौजूदगी में दूसरा निकाह नहीं करेगा या पत्नी को उसके शहर से बाहर नहीं ले जायेगा। ऐसी शर्तों के बारे में फुक्हा में सर्वसम्मति है कि इन शर्तों के लगाने से निकाह की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और निकाह

सही होगा, लेकिन इन शर्तों को पूरा करना अनिवार्य होगा या नहीं? इस सम्बन्ध में फिक्ह के इमामों में मतभेद है और यह मतभेद पुराना है। हज़रत इमाम अबू हनीफा, इमाम मालिक और इमाम शाफई के मत में मात्र वही शर्तें वैध हैं जो निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हों और शरीअत के प्रतिकूल न हों। यह लोग ऐसी शर्तों को निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध होने के कारण उनको भरोसे योग्य नहीं मानते हैं। यदि ऐसी शर्तें निर्धारित की गईं तो पति पर इनका पूरा करना अनिवार्य नहीं होगा।

इन इमामों की दलीलों का हाल यह है कि उपरोक्त शर्तें लगाकर ऐसी चीजों को हराम कर दिया जाता है जिनको अल्लाह ने हलाल किया है जैसे मर्द के लिए दूसरा निकाह करना, पत्नी के साथ सफर करना, पत्नी को अपने साथ रखना। शर्तों के माध्यम से हलाल को हराम कर दिया जाता है इस लिए ऐसी शर्तें अस्वीकार्य और भरोसा योग्य नहीं हैं।

इस सिलसिले में हम्बली फिक्ह में काफी खुला पन पाया जाता है। इमाम हम्बल के मत में पति पर उस शर्त का पूरा करना अनिवार्य होगा और पूरा न करने की स्थिति में औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। हम्बली फिक्ह के व्याख्याकार अल्लामा इब्ने कोदामा हम्बली ने लिखा है

''उन शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है जिनमें पत्नी का लाभ हो। जैसे उसके लिए शर्त लगाई जाये कि पति उसके घर से बाहर नहीं ले जायेगा, तो इसका पूरा करना अनिवार्य है, और यदि ऐसा नहीं किया तो निकाह निरस्त हो जाएगा। (अल मुग्नी ले इब्ने कोदामा, भाग-7, पृ.-79)

अल मक्नअ में है:

''यह दोनों तरह की शर्तें सही हैं जैसे अतिरिक्त महर की शर्त, या निर्धारित धन देना, या घर या शहर से बाहर न ले जाना, दूसरा निकाह न करना, इनको पूरा करना सही और अनिवार्य है और यदि ऐसा नहीं है तो पत्नी को निकाह निरस्त करने का अधिकार है'' (अल-मक्नअ, भाग-3, पृ.-49)

फुक्हा ने ऐसी शर्तों के पूरा करने को अनिवार्य होने पर कुरआन करीम की आयतों और नबी (सल्ल.) के इरशाद को दलील बनाया है जिसमें ईमान वालों

को वचन पूरा करने का आदेश दिया गया है, और वचन तोड़ने से मना किया गया है। लेखक का व्यक्तिगत रूझान है कि निकाह में शर्त लगाने के सिलसिले में और मौजूदा दौर के हालात से निपटने के लिए हम्बली मत अपनाना ठीक और वैध होगा।

स्पष्ट रहे कि मात्र वह शर्तें मान्य होंगी जिनको निकाह के समय बयान कर दिया जाये या, निकाह से पहले दोनों पक्षों के बीच जो आपस में सलाह से तय हो जाये। निकाह हो जाने के बाद लिखे गये समझौते का कोई महत्व नहीं होगा।

तलाक़ का अधिकार सौंपने के सिलसिले में आदेश

कुरआन करीम में तलाक का अधिकार मर्द को दिया गया है और कहा गया है कि ''निकाह का बन्धन मर्द ही के हाथ है'' लेकिन पति इस अधिकार को किसी अनजान व्यक्ति को दे सकता है। जिसे फिक्ह की शब्दावली में तौकील (वकील बनाना) कहा जाता है। वह स्वयं अपनी पत्नी को भी यह अधिकार दे सकता है जिसको फिक्ह की शब्दावली (Terminology) में तफ्वीज़-ए-तलाक कहा जाता है। तफ्वीज निकाह के पहले भी हो सकती है निकाह के समय भी हो सकती है और तलाक के बाद भी हो सकती है लेकिन निकाह के पूर्व तफ्वीज़ का सम्बन्ध निकाह की तरफ हो जैसे यह कहे कि मैने तुमसे निकाह किया और तुमको अपने ऊपर तलाक लागू करने का अधिकार होगा।

तौकील और तफ्वीज में अन्तर यह है कि पति जब चाहे अपने वकील को हटा दे और उससे तलाक का अधिकार वापस ले ले। हाँ, औरत को तलाक का अधिकार दे देने के बाद पति को वापस लेने का अधिकार नहीं होगा। मेरे विचार में औरत को मौजूदा दौर में पूरी तरह तलाक का अधिकार दे देना खतरे से खाली नहीं। औरत उस अधिकार का दुरूपयोग करने लगेगी इस लिए उचित यह है कि उसे तलाक का अधिकार दिया जाये परन्तु कुछ शर्तों के साथ। शर्तें अदा हुईं या नहीं हुईं इसका फैसला करने का अधिकार स्थानीय काजी या फिक्ह के विद्वान उलमा को होगा। उदाहरण के लिए काबीन नामा में पति की ओर से यह

वाक्य लिखा जाये कि ''यदि मैने अपनी पत्नी के अधिकार अदा नहीं किये या मेरी तरफ से अमुक अमुक शर्तों का उल्लंघन हुआ और उल्लंघन के बारे में फैसला उलमा या दारुल कजा के लोग करें तो मेरी पत्नी को एक तलाक लागू करने का अधिकार होगा।

दो तरह का महर निर्धारित करना

तलाक का दुरुपयोग रोकने के लिए दो तरह की महर के प्रस्ताव पर सेमीनार में सम्मिलित लेखकों नें विस्तारपूर्वक इमाम अबू हनीफा और साहिबैन के मतभेद का वर्णन किया है उस पर यहाँ चर्चा करेन की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस सम्बन्ध में आवश्यकता के आधार पर साहिबैन के मत को अपनाया जा सकता है और प्रश्नावली में बयान किये गये तरीके से दो तरह की महर तय करना वैध है।

औरत के लिए निकाह में नौकरी की शर्तः

इस्लाम ने औरतों पर आर्थिक दायित्व नहीं डाला है और अपनी सन्तान के पालन पोषण के लिए उसको कमाने की जिम्मेदारी नहीं दी गई है। इस्लाम ने घर का पूरा दायित्व मर्द को सौंपा है और घर के अन्दर का दायित्व, बच्चों का पालन पोषण पति के दौलत की देख भाल, घर का माहौल संवारने का दायित्व औरत पर डाला गया है। कुरआन करीम में है ''वह तुम्हारे घरों में ही सीमित रहें।'' इसी तरह मर्दों के बारे में कहा गया है ''मर्द औरतों पर कव्वाम (संरक्षक) हैं अल्लाह ने एक दूसरे पर वरीयती दी है और क्योंकि वह अपना धन उन पर खर्च करते हैं।'' अगर पत्नी कमाई करने में व्यस्त हो जाये तो पति का उसको घर तक सीमित रखने (हब्स)का अधिकार प्रभावित होगा हालाँकि उसी अधिकार के कारण पति पर उसकी जीविका अनिवार्य है और अगर वह काम जिसके करने के लिए औरत घर से बाहर जाये और औरत के बाहर के कार्यों में व्यस्त रहने के कारण पति के अधिकार पर प्रभाव पड़े या उसको हानि

पहुँचे तो पति को ऐसे कार्य से अपनी पत्नी को रोकने का अधिकार प्राप्त होगा।

इस सिलसिले में मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि यदि निकाह के समय औरत की ओर से नौकरी की शर्त लगा दी गई तो शर्त निरस्त हो जाएगी और निकाह सही रहेगा औरत पति पर उस शर्त का पूरा करना अनिवार्य नहीं होगा। परन्तु इस शर्त पर जब चाहे लौट सकता हैं। कुछ विशेष स्थितियों में जब पति निकम्मा और काहिल हो और कमाता न हो और औरत को आथिक कष्ट हो तो फिक्ह हम्बली के मत पर अमल किया जा सकता है अर्थात पत्नी नौकरी कर सकती है।

☆☆☆

शर्त के साथ निक़ाह

मौ० वलीउल्लाह क़ासमी

शर्त का अर्थ किसी चीज़ को अनिवार्य कर देना है, इसका बहुवचन शुरुत है, अरबी में शरीतह का भी वही अर्थ है और इसका बहुवचन शराएत है। (लिसानुल अरब, भाग-7, पृ.-329, अल-कामूसुल-मोहीत 869)

शब्द शर्त की परिभाषा शब्दावली के रूप में भी यही है।

शर्त या शराएत वह मामला है जिसके साथ किसी दूसरे मामले को जोड़ दिया जाये और वह मौजूद न हो और अगर मौजूद हो तो भी उसका महत्व न हो अर्थात जिस चीज के लिए शर्त लगाई गई हो उसको पाने के लिए शर्त का पाया जाना अनिवार्य हो। हाँ, शर्त के पाये जाने से उसका पाया जाना अनिवार्य नहीं है।

अत: शर्त के कारण दूसरे पक्ष पर कुछ ऐसे दायित्व लागू हो जाते हैं जो उस पर अनिवार्य न थे लेकिन शरीअत ने दोनों पक्षों को बिल्कुल आजाद नहीं छोड़ दिया है कि जैसे चाहें शर्त निर्धारित कर लें बल्कि मामले की असलियत और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए दोनों पक्षों की योग्यता और प्रकृति के अनुसार एक तरह का बन्धन लगा दिया है ताकि कमजोर पक्ष का शेषण न हो सके और उसकी मजबूरियों से अनुचित लाभ न उठाया जा सके। इस तरह निकाह में लगाई जाने वाली शर्तें तीन प्रकार की है। इनमें से दो तरह की शर्तों में उलमा में कोई मतभेद नहीं है लेकिन तीसरी तरह की शर्तें जिनमें एक पक्ष पर ऐसी पाबन्दी लगती है जो बिना शर्त की स्थिति में नहीं लगती है जैसे पत्नी की पति के साथ सफर न करने की शर्त दूसरा निकाह न करने की शर्त, अपने माता पिता के घर में ही रहने की शर्त, इनमें फुक्हा के बीच मतभेद है। हनफी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए अल्लामा कश्मीरी लिखते हैं, जो शर्तें निकाह के

विपरीत न हों जायज हैं दीनदारी के अनुसार उनका पालन करना चाहिए लेकिन कानूनी तौर पर उनका पालन आवश्यक नहीं है। शाफई मत में अबू उबैदा ने फतहुल-बारी से दलील दी है।

''हमारा अमल इस पर है कि शर्त पूरा करने का आदेश देते हैं लेकिन दूसरी स्थिति में इसके विरुद्ध कोई फैसला नहीं करेंगे।'' (फतहुल बारी, भाग-9, पृ.-273)

अल्लामा 'ऐनी' के अनुसार इमाम अबू हनीफा इमाम शाफई, और इमाम मालिक का भी यही दृष्टिकोण है।

''दूसरा मत यह है कि पति को अल्लाह से डरने और शर्त के अनुसार अमल करने का आदेश दिया जाये और फैसले को उस पर थोपा न जाये, यही मत इमाम मालिक इमाम अबू हनीफा और इमाम शाफई का है।'' (उम्दतुल कारी, भाग-2, पृ.-14)

लेकिन वास्तविकता यह है कि इस कथन का सम्बन्ध इमाम मालिक और इमाम शाफई से जोड़ना ठीक नहीं है। नौव्वी ने इमामा शाफई के इस कथन का उल्लेख किया है कि शर्त मूर्खतापूर्ण है और निकाह महर मिस्ल के साथ सही है (शरह नौव्वी अला मुस्लिम, भाग-1, पृ.-255)

इमाम मालिक कहते है यह शर्त घृणा करने योग्य है केवल इस पर अमल करना बेहतर है। (फिक्ह इस्लामी, भाग-7, पृ.-60)

ये तीनों इमाम इस बात पर सहमत हैं कि औरत को इसकी वजह से निकाह के निरस्त करने का अधिकार होगा इसके पक्ष में बहुत से उलमा और हदीस के विद्वान हैं जिनकी सूची बहुत लम्बी है जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं।

पहले पक्ष की दलीलें

जो लोग शर्त को आवश्यक नहीं समझते या उसके कारण निकाह को निरस्त करने का अधिकार नही देते वह निम्नलिखित हदीसों और फिक्ही धरोहर को दलील बनाते हैं:

(1) अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फरमाया: ''मुसलमान शर्तों के अनुसार अमल करेंगे: मगर उस शर्त पर नहीं जो किसी हलाल को हराम कर दे और हराम को हलाल कर दे।'' (अबू दऊद, इब्न-ए-माजा, तिर्मिजी)

वह यह दलील देते हैं कि शर्त लगाने के कारण एक हलाल चीज अर्थात दूसरा निकाह या साथ में सफर इत्यादि हराम हो जाते हैं इसलिए ऐसी शर्त हदीस के अनुसार पूरा करने योग्य नहीं है।

(2) एक ऐसी ही शर्त के अवसर पर रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने फरमाया ''लोगों को क्या हो गया है कि वह ऐसी शर्तें लगाते हैं जो अल्लाह की किताब में नहीं है, हर वह शर्त जो अल्लाह की किताब में न हो वह गलत है यद्यपि वह सौ शर्तें हों। अल्लाह का फैसला सर्वोपरि है और अल्लाह की शर्त अधिक विश्वास योग्य है।

इससे साबित हुआ कि वह शर्तें जो अल्लाह की किताब और उसके उद्देश्य के अनुकूल नहीं वह गलत है, उपरोक्त शर्तें भी इसी प्रकार की हैं क्योंकि कुरआन में इस सिलसिले में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगया गया है, जब कि पति को शर्तों का पाबन्द होना पड़ता है।

(3) हज़रत अली से उस औरत के लिए पूछा गया जिसने निकाह के समय मैके में रहने की शर्त लगा दी थी तो आप ने फरमाया पति को वहाँ ले जाने का अधिकार प्राप्त है क्योंकि अल्लाह की शर्त को औरत के शर्त पर वरीयता है। ''अल्लाह की शर्त औरत की शर्त से पहले है'' (तिर्मिज़ी, भाग-1, पृ.-214)

(4) चूँकि निकाह के उद्देश्य और आवश्यकता के अनुकूल नहीं है इस लिए उसका पूरा करना अनिवार्य नहीं।

(5) इब्ने वहब जय्यद की सनद (प्रमाण) से रिवायत करते हैं कि औरत ने निकाह के समय यह शर्त लगा दी थी कि वह मैके में ही रहेगी उसके बाद पति वहाँ से ले जाना चाहा। मुक़दमा हजरत उमर (रजि.) की अदालत में प्रस्तुत हुआ, आपने शर्त को कोई महत्व नहीं दिया और यह फैसला दिया कि औरत पति के साथ रहेगी जहाँ ले जाना चाहता है ले जा

सकता है। (फतहुल बारी, भाग-9, पृ.-272)

(6) हदीस ''निस्सन्देह, वह शर्तें पूरा किये जाने की सबसे अधिक हकदार है जिन के द्वारा तुम ने औरतों को हलाल किया है।'' में शर्त का तात्पर्य महर से है या, वह दायित्व है जो निकाह के कारण स्वयं अनिवार्य हो जाते हैं। अत: क़ाज़ी खाँ लिखते हैं:

''शर्त से तात्पर्य महर है, इस पूँजी की तुलना में वही शर्त के रूप में है और भी कहा गया है कि वह सभी बातें हैं जिनका पत्नी होने के कारण वह हकदार हो जाती है अर्थात महर, जीविका, अच्छा व्यवहार, क्यों कि निकाह के कारण पति ने अपने ऊपर अनिवार्य कर लिया है, अर्थात औरत ने निकाह में उसकी शर्त लगा दी है।

दूसरे पक्ष की दलीलें

जो लोग शर्त को पूरा करना अनिवार्य समझते हैं और शर्त पूरा न होने की स्थिति में औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार देते हैं उन की दलीलें निम्नलिखित हैं:

(1) ''ऐ इमान वालो! दिये गये (उक़ूद) वचन को पूरा करो''(सूर: माइदा-1)

क़ुरआन की इस आयत में ''उक़ूद'' (वचन) से तात्पर्य समझौते और वचन हैं। हजरत अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास, मुजाहिद, इब्ने जरीर, अबू उबैदा और दूसरे लोगों से आयत की यही व्याख्या नकल की गई है और स्पष्ट है कि शर्त भी एक वादा, वचन और समझौता ही है। अत: हस्सास राज़ी लिखते हैं। और ऐसे ही हर वह शर्त जो व्यक्ति किसी चीज में अपने ऊपर लगा ले वह ''अक्द'' है। आगे इस आयत के अनुसार वह लिखते हैं कि व्यक्ति जो शर्त स्वीकार कर ले उसका पूरा करना अनिवार्य है। (अहकामुल-क़ुरआन, भाग-3, 83)

उन्हीं के शब्दों में ''इससे पता चलता है कि वह तमाम शर्तें जो व्यक्ति अपने ऊपर लगाए उनका पूरा करना अनिवार्य है जब तक कि किसी विशेष शर्त के लिए कोई दलील न हो'' (अहकामुल-क़ुरआन, भाग-3, पृ.-286)

''और वादों (वचनों) को पूरा करो क्यों कि वादों के बारे में पूछा

जायेगा।'' (अल-इस्रा-32)

यह आदेश सबके लिए है चाहे वह शर्त अल्लाह से हो या बन्दे से हो यद्यपि वह काफिर ही क्यों न हो। अतः इरशाद है। ''सिवाय उन मुश्रिकों (अल्लाह के साथ साझी ठहराने वाले) के जिनसे तुम्हारा समझौता है और उन्होंने उसमें कोई कमी नहीं की और तुम्हारे विरुद्ध किसी की सहायता नहीं की तो निर्धारित समय तक समझौते का पालन करो, निःसंदेह अल्लाह डरने वालों को पसन्द करता है।'' (सूरः तौबा-7)

इस प्रकार की बहुत सी आयतें हैं जिनमें वचन को पूरा करने का आदेश दिया गया है और न पूरा करने पर सज़ा की धमकी दी गई है। शर्त भी एक तरह का वचन ही है जिसको पूरा करना अनिवार्य है।

(2) हदीस में वादा तोड़ने निफाक़ (कपटाचार) की पहचान कहा गया है रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने वादा तोड़ने की निन्दा की है और सजा की धमकी दी है।

(3) निकाह के मामले में तो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने स्पष्ट रूप में कहा है:

''पाबन्दी करने योग्य सबसे अधिक वही शर्तें हैं जिनके द्वारा तुमने औरतों को हलाल किया है।'' (बुखारी, मुस्लिम)

इससे ज्ञात हुआ कि दूसरी शर्तों की तुलना में निकाह में लगाई जाने वाली शर्त सर्वाधिक पूरा करने योग्य है।

(4) अल्लाह के रसूल सल्ल.) ने इरशाद फरमायाः ''लोग अपनी शर्तें पूरी करें जब तक कि वह हक़ के मुताबिक हों''

इस हदीस को कई राावियों ने बयान किया है जिनमें से कुछ रावी (रिवायत करने वाले) कमजोर हैं मगर सनदें (प्रमाण) अधिक होने के कारण इसकी पुष्टि हो जाती है और इस अर्थ में दूसरी हदीसें भी मौजूद हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि शर्तें अगर शरीअत के उद्देश्य के विपरीत न हों तो जायज़ हैं और लोगों पर उसकी पाबन्दी अनिवार्य है।

(5) हज़रत उमर (रजि.) ने एक अवसर पर यह फैसला किया कि पति के

लिए शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है अन्यथा पत्नी को निरस्त करने का अधिकार प्राप्त होगा, पति ने विरोध किया कि मर्दों के तलाक के अधिकार का क्या अर्थ है? हज़रत उमर रज़ि ने उत्तर दिया कि शर्त न पूरा होने पर अधिकार निरस्त हो जाते हैं।

(6) पवित्र कुरआन से यह सिद्ध है कि मामलात का असली आधार सहमति है इस लिए जिस शर्त पर दोनों पक्षों में सहमति हो और निकाह की आवश्यकता और उद्देश्य के विपरीत न हो, और उसके कारण शरीअत की हद न टूटे तो वह वैध हैं और उनका पूरा करना अनिवार्य है।

(7) मामलात में असल ''वैधता है और इसमें तमाम फुक़हा में स्र्वसम्मति है सिर्फ जाहिरीया हजर (حـــظـــر मना करने) के समर्थक हैं, (मब्दाउर्रज़ा फिल उकूद, पृ.-1186) इसके अनुसार भी वह शर्तें जिनको शरीअत ने मना न किया हो वैध होंगी।

(8) इबादतों में असल हज़र (मनाही) है कि केवल वही चीजें अनिवार्य होंगी जिसे शरीअत ने अनिवार्य (फर्ज़) करार दिया हो, अपनी तरफ से किसी चीज को फर्ज करार देना वैध नहीं है लेकिन इसके बावजूद इबादतों में 'नजर' के रूप में शर्त लगाने की अनुमति दी गई है कि जो चीज ज़िम्मे में अनिवार्य न हो उसे अपने ऊपर अनिवार्य करले, जब इबादतों में असली मनाही (حظر) है, में शर्त की अनुमति है और उसका पूरा करना अनिवार्य है तो मामलात जिसमें असल इबाहत (अनुमति) है, में सबसे पहले उसका पूरा करना अनिवार्य होगा।

(9) यह शर्तें ऐसी हैं जिनमें औरत का लाभ है यह निकाह के उद्देश्य के विपरीत नहीं इसलिए जिस तरह महर की अधिकता अनिवार्य है उसी तरह ये शर्तें भी अनिवार्य हैं। (फतावा कुब्रा, भाग-3, पृ.-329)

दलीलों का विश्लेषण

वास्तविकता यह है कि पहले पक्ष की तरफ से जो दलीलें प्रस्तुत की गई हैं उनमें हजरत अली के असर (धरोहर) के अतिरिक्त कोई दलील नहीं है। एक

हदीस ''मुसलमानों को शर्तों को पूरा करना आवश्यक है परन्तु वह शर्त नहीं जो हराम को हलाल कर दे और हलाल को हराम कर दे।''को ही ले लीजिए, वास्तव में शर्त के कारण हलाल वस्तु हराम नहीं होती बल्कि उसका करना अब भी वैध है, इस शर्त के विरुद्ध करने के लिए अब भी दरवाजा खुला है बल्कि उसका करना अनिवार्य हो जाता है और उसके विरुद्ध करने के लिए निकाह निरस्त हो जाता है। किसी मुबाह (स्वीकृत) चीज को अनिवार्य क़रार दे लेना और है, और उसको हराम कर लेना और, इन दोनों में स्पष्ट अन्तर है। इब्ने कोदामा अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं। हम कहते हैं कि शर्त के कारण कोई हलाल हराम नहीं होता है।, औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार मिलता है। (अल-मुगनी, भाग-7, पृ.-71)

फिक्ह हम्बली की पुस्तकों में स्पष्ट किया गया है कि पति के लिए शर्त के अनुसार अमल करना मात्र सुन्नत है, जिन लोगों ने अनिवार्य करार दे लिया है तो उसका अर्थ है कि औरत को उसके कारण निरस्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। 'इक्नाअ' में है।

''तो यह शर्त सही है और पति के लिए अनिवार्य है अर्थात शर्त पूरी न करने की स्थिति में औरत को अधिकार होगा और शर्त को पूरा करना अनिवार्य नहीं बल्कि सुन्नत है।''

रह गई दूसरी हदीस तो वह लाभदायक नहीं है इसलिए कि ''हर वह शर्त जो अल्लाह की किताब में नहीं है'' से तात्पर्य वह शर्तें हैं जो शरीअत के कानून और उसके उद्देश्य के प्रतिकूल हों। उलमा और शोधकर्ताओं ने हदीस की यही व्याख्या की है अत: अल्लामा कर्तबी लिखते हैं:

''अल्लाह की किताब में न हों'' से तात्पर्य उन शर्तों से है जो असल के अनुसार हो शरीअत के अनुसार न हो और उनमें कुछ वह हैं जो असल की असल हैं जैसे किताबुल्लाह की सुन्नत की दलालत, इज्मा (सर्व सम्मति) और कयास के (अस्ल) होने पर (फैजुल क़दीर, भाग-5, पृ.-22)

उपरोक्त हदीस जिस पृष्ठभूमि में कही गई है वह भी इसी दृष्टिकोण की पुष्टि करती है कि हजरत बरैह के खरीद-व-फरोख्त और उनके अभिभावकत्व

को खरीदने को हुज़ूर (सल्ल.) ने इसी आधार पर अवैध क़रार दिया। इसलिए कि आज़ाद करने के लिए अभिभावकत्व खरीदना गुलामों की आजादी के उद्देश्य के प्रतिकूल था।

रहा यह कहना कि यह निकाह के उद्देश्य के अनुकूल नहीं है तो यह भी देखना पड़ेगा कि जिससे किसी एक पक्ष का स्वार्थ जुड़ा हो तो अनिवार्य रूप से निकाह के उद्देश्य के प्रतिकूल नहीं बल्कि अधिकतर वह निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हुआ करता है जैसा कि उपरोक्त शर्तों में है। आखिर निकाह के कारण ही हर पक्ष पर कुछ दायित्व आते हैं और उनकी आजादी पर पाबन्दी लगती है तो अगर अपनी खुशी के लिए कुछ अतिरिक्त पाबन्दियाँ लगा लेता है तो यह निकाह के उद्देश्य के विपरीत कैसे है? हदीस ''सब से अधिक पूरा करने की हकदार .....'' से यह कारण बयान करना कि इससे तात्पर्य महर या वह दायित्व है जो निकाह के कारण लागू होते हैं, इस हदीस के संदर्भ के विरुद्ध है। इस लिए इब्ने दकीकुल ईद शाफई फरमाते हैं:

उन अधिकारों के अनिवार्य होने में शर्तें प्रभावी नहीं हैं इसलिए किसी आदेश को शर्त लगाकर उनपर निर्भर करने की आवश्यकता नही है और हदीस के संदर्भ भी इसके विरुद्ध मालूम होते हैं शब्द अहक्कुश्शुरूत (सबसे अधिक हकदार शर्तें) का अर्थ हैं कि कुछ शर्तों को पूरा करना आवश्यक है और कुछ को पूरा करना अधिक आवश्यक है और वह शर्तें जो निकाह की आवश्यकता में सम्मिलित हों वह अनिवार्य होने में और पूरा किये जाने में समान हैं।

दूसरे तरफ से प्रस्तुत शर्त में भी सहाबा के कथनों के अतिरिक्त कोई दलील नहीं है और हज़रत उमर (रजि.) से नकल की गई रिवायतों में समानता नहीं है। दोनों रिवायतें सही हैं इनमें से किसी एक को वरीयता देना कठिन है। हजरत साद बिन अबी वक्कास, अब्दुल्लाह इब्ने मसूद, उमर इब्नुल-आस और हजरत मोआविया से रिवायत सही और स्पष्ट है। शेष जिन दलीलों का उल्लेख है उनसे केवल यही होता है कि वचन को पूरा करना अनिवार्य है और उनसे यह पता नहीं चलता है कि उसके कारण निकाह को निरस्त भी किया जा सकता है। इस सिलसिले में हनफी दृष्टिकोण को जो अल्लामा ऐनी और

कश्मीरी ने प्रस्तुत किया है वही कुरआन व हदीस से अधिक निकट है फिर भी जमाने में जो समाज में बिगाड़ व फसाद है लोगों की निगाह में वचन पूरा करने का कोई महत्व नहीं है, वैध, अवैध की कोई परवाह नहीं है आवश्यकता है कि इमाम अहमद बिन हम्बल का मत जो बहुत से सहाबा का भी मत है अपना लिया जाये या औरतों को ''तफ्वीज'' (अधिकार सौंपने) के महत्व की जानकारी दी जाये कि वह निकाह के समय यह कह दें कि पति अगर उन शर्तों का उल्लंघन करेगा तो उन्हें सम्बन्ध तोड़ने का अधिकार होगा।

तलाक़ का अधिकार सौंपना

अल्लाह ने तलाक़ का अधिकार मर्द को दिया है जिसे यदि वह चाहे तो पत्नी को सौंप सकता है जिसे फिक्ह की शब्दावली में 'तफ्वीज-ए-तलाक' कहते हैं (अल-फिक्हु-ल-इस्लामी व अदिल्लतहू, भाग-7, पृ.-414) तफ्वीज के कई तरीके हैं, कभी समय और शर्त का कोई निर्धारण नहीं होता, पूरी तरह सौंप दिया जाता है कि मामला तेरे हाथ में है। इस स्थिति में औरत को स्वयं तलाक़ देने का अधिकार केवल बैठक (मजलिस) तक सीमित रहता है और बैठक बदल जाने से अधिकार समाप्त हो जायेगा लेकिन अगर यह कह दे कि मामला तेरे हाथ में है जब भी तू चाहे। इस स्थिति में जीवन पर्यन्त औरत को यह अधिकार प्राप्त रहेगा, यहाँ तक कि वह स्वयं इस अधिकार को समाप्त कर ले। यदि पति इस तफ्वीज के लिए कोई समय सीमा निर्धारित कर देता है जैसे आज के दिन तुझे तलाक देने का अधिकार है तो पूरा एक दिन तक यह अधिकार जारी रहेगा। अगर तफ्वीज में शर्त लगी हुई है जैसे अमुक अमुक आ गया तो तेरा मामला तेरे हाथ में है। तो इसके भी वही आदेश है, जो ऊपर उल्लिखित है। (यह विवरण बदाएअ, भाग-2, पृ.-113-116)

तफ़्वीज़-ए-तलाक़ के वाक्य

तफ्वीज में प्रयोग किये जाने वाले वाक्य तीन तरह के हैं जिनके आदेश अलग अलग हैं वह निम्नलिखित हैं:-

1. मामला तेरे हाथ में है الامر بیدک

2. अपने लिए विकल्प चुन लो اختاری نفسک

3. तुझे तलाक अगर तु चाहे انتِ طالق ان شیتِ

पहले दोनों वाक्यों के माध्यम से तलाक पड़ने के लिए अनिवार्य है कि पति इन शब्दों को बोलने के साथ तलाक़ की नीयत करे या कोई प्रमाण मौजूद हो क्योंकि तलाक के लिए ये मात्र संकेत देने वाले हैं जिनमें नीयत और प्रमाण का होना अनिवार्य है इन दोनों में अन्तर मात्र इतना है कि पहले में अगर मर्द तलाक की नीयत करता है तो एक तलाक का अधिकार प्राप्त होगा। अगर तीन की नीयत करता है तो तीन का, लेकिन दूसरे में तीन की नीयत वैध नहीं। दूसरे में पति के शब्दों में या औरत के उत्तर में ''नफ्स'' या ''तलाक'' का बयान करना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए पति कहता है ''विकल्प चुन ले'' औरत कहती है मैंने ''चुन लिया'' अगर विकल्प वाला शब्द पति दो बार कह दे तो या दोनों में से कोई शब्द ''इख्तेयारतुन् (विकल्प है)'' का प्रयोग करे तो भी काफी है।

तीसरी स्थिति में नीयत की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यहाँ तलाक का शब्द स्पष्ट रूप से मौजूद है अगर मात्र एक तलाक का उल्लेख हो तो वह तलाक रजई (वापस हो सकने वाला) होगी। जब कि पहली दोनों स्थिति में तलाक बाइन होगी। (अल-फिक्हुल इस्लामी व अदिल्लतुहू, भाग-7, पृ.-415-16)

अधिकार सौंपना कब वैध है?

अधिकार सौंपना निकाह के समय भी वैध है और निकाह के बाद भी लेकिन निकाह के समय तफ्वीज़ के वैध होने के लिए अनिवार्य है कि माँग औरत की तरफ से हो और पति उसे स्वीकार कर ले। उदाहरण के लिए मर्द स्वीकृति देता है औरत जवाब में कहती है 'मैं इस शर्त पर स्वीकार करती हूँ कि तलाक का अधिकार मेरे हाथ में रहेगा और मर्द उसे मान लेता है। अगर मर्द स्वीकृति इस तरह देता है कि मैं तुम से निकाह इस शर्त पर करता हूँ कि तलाक का अधिकार तुम्हारे हाथ में रहेगा और औरत स्वीकार कर लेती है तो

यह वैध नहीं है। अल्लामा इब्ने आबिदीन शामी दोनों के स्पष्टीकरण फ़क़ीह अबुल-लैस के हवाले से इन शब्दों में करते हैं।

''अगर मर्द प्रारम्भ करता है तो तलाक नहीं पड़ेगी और अधिकार औरत के हाथ में नहीं होगा, फकीह अबुल-लैस इन दोनों स्थितियों में अन्तर बयान करते हैं कि प्रारम्भ जब पति की तरफ से हो तो यह तलाक और तफ़्वीज निकाह से पहले है अत: वैध नहीं है। जब प्रारम्भ औरत की तरफ से हो तो यह तफ़्वीज निकाह के बाद है इस लिए जब मर्द ने औरत के शब्दों के बाद कहा कि मैंने स्वीकार किया और और उत्तर में प्रश्न निहीत रहता है तो मानो कि इसने कहा कि मैंने कुबूल किया इस शर्त पर कि तुझ पर तलाक हो या इस पर कि मामला तेरे अधिकार में हो तो यह मामला औरत के अधिकार में होगा।''

अगर निकाह से पहले अधिकार सौंपने की शर्त तय हो जाये तो इसका कोई मूल्य नही क्योंकि पति अभी उसका स्वामी नहीं हुआ है तो जिस चीज का वह स्वयं स्वामी नहीं तो दूसरे को कैसे स्वामी बना सकता है। अगर अधिकार सौंपना इस तरह हो कि मैंने इस औरत से निकाह किया तो तू अपने तलाक के लिए अधिकृत होगी तो यह वैध है क्योंकि यह तफ्वीज तलाक ही जैसा है। जिस प्रकार निकाह से पहले ''अतिरिक्त तलाक़'' वैध है वैसे ही तफ्वीज़-ए-एज़ाफ़ी अतिरिक्त तफ्वीज़ भी वैध है।

हजरत थानवी लिखते हैं:

इसकी तीनों स्थितियाँ वैध हैं चाहे निकाह से पहले लिखवाया जाये या निकाह के समय या निकाह के बाद। लेकिन पहली और दूसरी स्थिति में वैध होने के लिए शर्त है। पहली स्थिति में काबीन नामा निकाह से पहले लिखा जाये और उसके वैध या लाभदायक होने के लिए यह शर्त है कि उसमें निकाह का उल्लेख होना अनिवार्य है, मिसाल के तौर पर यह लिखा जाये कि अगर मैं अमुक पुत्री अमुक से निकाह करूँ और समझौते में लिखी शर्तों में से किसी शर्त का उल्लंघन करूँ तो औरत को यह अधिकार होगा कि वह उसी समय या किसी और समय अपने ऊपर तलाक बाइन (अलग करने वाला) लागू करके अलग हो जाये। अगर इसमें निकाह का उल्लेख न किया गया तो समझौता बेकार

होगा और उससे औरत को किसी तरह का अधिकार प्राप्त न होगा। दूसरी स्थिति यह है कि प्रस्ताव और स्वीकृति (ईजाब व कुबूल) में शर्तों को मौखिक रूप से बयान कर दिया जाये। इसके सही होने के लिए शर्त है कि प्रस्ताव महिला की तरफ से हो। (अल-हीलतुल नाजिज़ा, पृ.-21)

शर्त के साथ तफ़वीज़ः

औरतों की सोच समझ और मानसिकता और भावुकता को देखते हुए पूरी तरह तलाक का अधिकार न सौंपा जाये बल्कि सावधानी के लिए कुछ शर्त लगा देना बेहतर है, इसी प्राकृतिक कमी के कारण रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने तख़ईर (अधिकार देने के) के अवसर पर हजरत आयशा से फरमाया, आयशा जल्दी नहीं करना और माँ बाप से परामर्श लिए बिना कोई कदम न उठाना। पवित्र पत्नियों ने हुजूर (सल्ल.) से आर्थिक तंगी की शिकायत की और यह माँग किया कि उनके खर्च में कुछ बढ़ोत्तरी किया जाये तो उस अवसर पर यह आयत उतरी:

''ऐ नबी (सल्ल.) अपनी पत्नियों से कह दीजिए कि ''अगर आप दुनिया और उसकी चमक दमक चाहती हैं तो आ जाइये आपको कुछ धन दे दूँ और भले तरीके से आपको विदा कर दूँ।''

इस आयत में पवित्र पत्नियों को यह अधिकार दिया गया है कि वह मौजूदा हालत अर्थात आर्थिक तंगी के साथ दाम्पत्य में रहना स्वीकार करें या फिर तलाक लेकर आजाद हो जायें। इसको तखईर कहा जाता है। (मआरिफुल कुरआन, भाग-7, पृ.-127)

इसलिए अधिकार सौंपने के साथ सावधानी के लिए कुछ अतिरिक्त शर्तें बढ़ाई जा सकती हैं, जैसे तलाक का अधिकार उसी समय होगा जब औरत के माता पिता उसी पर सहमत हों।

हज़रत थानवी उपरोक्त कथन से सहमत है और सावधानी के तौर पर निकाह में शर्त लगाने के पक्ष में है ताकि उससे महिला की रक्षा हो सके और उसका शेषण न हो सके। साथ साथ महिला की जो शिकायत हो उसे कम से

कम दो व्यक्ति प्रमाणित करें। (अल-हीलतुन् नाजिज़ा, पृ.-24)

क्या शर्त के साथ तफ़्वीज़-ए-निकाह मशरूत (शर्त वाला) निकाह है?

जाहिरी तौर पर पता चलता है कि निकाह का अधिकार शर्त के साथ सौंपना निकाह पर शर्त लगाना है हालाँकि हनफी दृष्टिकोण के अनुसार शर्त अनिवार्य नहीं बल्कि सरासर ग़लत है और उसके कारण निकाह निरस्त नहीं होगा जब कि अधिकार सौंपने की शर्त से निकाह में औरत को अपने ऊपर तलाक लागू करने का अधिकार मिलता है। डा. मुस्तफा सबाई की दूर दृष्टि ने इसे महसूस किया और उसका स्पष्टीकरण किया कि निकाह का अधिकार शर्त के साथ सौंपने से निकाह पर शर्त का प्रभाव नहीं पड़ता। उनका कहना है।

वह लोग इसका निष्कर्ष निकालते हैं कि यह शर्त की तरह नहीं है कि इसके नियम के अनुसार गलत हो बल्कि पति ने औरत को एक अधिकार का स्वामी बनाया जिसे वह निकाह के बाद जब चाहे स्वामी बना सकता है। इस प्रकार यह वैध है कि औरत को इस अधिकार का स्वामी निकाह के समय बना दे। उसमें कोई बात ऐसी नहीं है जो साधारण नियम के विपरीत हो। (अल-मरअतु बैनल फिक्ह वल-कानून)

महर में शर्त लगाना:

तलाक की अनुमति इस लिए दी गई है कि दोनों पक्षों में मतभेद होने से जिन्दगी में घुटन होने लगती है। इसी घुटन से छुटकारा के लिए तलाक एक माध्यम है लेकिन इसके दुरूपयोग को रोकने के लिए कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये हैं जैसे यदि तलाक दे तो महर 20 हजार अन्यथा महर 10 हजार। इस स्थिति में इमाम अबू हनीफा महर मिस्ल के पक्ष में है और साहिबैन निर्धारित महर के।

अल्लामा सरख़सी लिखते हैं:

अगर कोई निकाह इस तरह करे कि पहले से पत्नी न हो तो एक हजार और अगर दो हो तो दो हजार दिरहम, कूफा से न जाये तो एक हजार जाये तो

दो हजार। तो इमाम अबू हनीफा के अनुसार दोनों स्थितियों में पहले तलाक दे तो जिस महर का उल्लेख है वही सही है और दूसरा गलत है और शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से पहले तलाक दे तो निर्धारित महर का आधा देय होगा, और सम्बन्ध स्थापित हो जाए और शर्त को भी पूरा कर दे तो महर एक हजार है और अगर शर्त के अनुसार न करे तो औरत के लिए महर मिस्ल है मगर वह दो हजार से अधिकार न होगी। और इमाम अबू यूसुफ और मुहम्मद को कहना है कि दोनों शर्तें समझौते के अनुसार वैध हैं।

यद्यपि इस मामले में इमाम अबू हनीफा कीमत अबू युसुफ और मुहम्मद से अलग है लेकिन दलील के अनुसार साहिबैन का मत मजबूत है और आज इसी की आवश्यकता भी है। इसी कारण हनफी उलमा ने इमाम अबू यूसुफ और मुहम्मद के दृष्टिकोण को अपनाया है।

स्पष्ट रहे कि दोनों मामले में इमाम अबू यूसुफ और मुहम्मद की राय पर फतवा देते समय कुछ शर्त लगाना आवश्यक है ताकि जिस उद्देश्य से इस्लाम ने तलाक और एक से अधिक निकाह की अनुमति दी है वह बाकी रहे शर्त के कारण मर्द बिल्कुल बँध जायेगा और प्रतिकूल परिस्थितियों में धन की मजबूरी से तलाक न दे सकेगा और जिन्दगी अजीरन बन कर रह जाएगी और तरह तरह की बुराइयाँ और बिगाड़ पैदा होंगे जिनको मिटाने के लिए शरीअत ने तलाक की अनुमति दी है।

सेवारत औरतः

शर्त वाले निकाह का विवरण ऊपर आ चुका है। स्वीकृत शर्तें इमाम शाफई के मत में अनिवार्य नहीं और हनफी उसको वचन मानते हैं और उसको निभाना भी अनिवार्य मानते हैं। अगर पति ऐसा नहीं करता तो उसको मजबूर नहीं किया जा सकता है और न औरत को निकाह निरस्त करने का अधिकार होगा। कासानी लिखते हैं।

''पति का यह शर्त लगाना कि वह अपनी दूसरी पत्नी को तलाक देगा या उसको शहर से नहीं ले जायेगा यह अनिवार्य नहीं इसलिए कि यह वचन है जो

पति ने दिया है और उस पर उसे मजबूर नहीं किया जायेगा। (बदाएअ, भाग-2, पृ.-285)

भविष्य में यदि कोई उचित नौकरी मिले तो उस से वह नहीं रोकेगा। और इस शर्त को पति स्वीकार कर लेता है फिर भी उसे रोकने का अधिकार है और पत्नी को पति के आज्ञा का पालन भी अनिवार्य है। पत्नी यदि पति की अनुमति के बिना सेवारत रही तो वह 'नाशिज़ा' अवज्ञाकारिणी' कहलायेगी और जीविका की अधिकारी नहीं होगी। (फिक़्हुल इस्लामी व अदिल्लतुहू, भाग-7, पृ.-792)

इब्ने नजीम मिस्री लिखते हैं:

अगर महिला दिन में पति के साथ रहे और रात में साथ न रहे अथवा इसके विपरीत हो तो वह जीविका की हक़्दार नहीं होगी इसलिए कि उसका समर्पण अधूरा है इससे हमारे दौर के इस मसले का हल निकल आया जब निकाह किसी सेवारत औरत से हो जो पूरे दिन कारखाने में रहती हो और रात पति के साथ व्यतीत करे तो उसके लिए जीविका नहीं।

इमाम अहमद के मतानुसार शर्त को पूरा करना अनिवार्य है पति को उससे रोकने या मना करने का अधिकार नहीं है यदि वह नौकरी छोड़ने के लिए मजबूर करता है तो पत्नी निकाह निरस्त करने की माँग कर सकती है और बिना अनुमति के नौकरी करने पर भी वह 'जाशिज़ा(अवज्ञाकारणिी)' नहीं कहलायेगी और जीविका की अधिकारी होगी। वहबा ज़ुहीली उनके प्रवक्ता के रूप में कहते हैं कि इमाम हम्बल ने इस शर्त को भी सही बताया है ओर उसको पूरा करना अनिवार्य है। पति को यह अधिकार नही कि पत्नी को काम करने से रोके। अगर रोकेगा तो ना-फरमान नहीं कहलाएगी। (अल-फिक्हुल-इस्लामी, भाग-6, पृ.-792)

☆☆☆

संक्षिप्त लेख

निकाह में शर्त लगाना

मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी

(अ) निकाह के समय दोनों पक्षों में से किसी का ऐसी शर्त लगाना जिसका उद्देश्य निकाह से पैदा होने वाले दायित्व से बचना हो। ऐसी स्थिति में निकाह सही होगा और शर्त निरस्त हो जायेगी। जैसे जीविका प्रदान करने का दायित्व ''क्योंकि वह अपने माल को खर्च करते हैं.....'' (सूरः निसा-22)'' से बचना। ऐसी शर्त सही न होगी क्योंकि मर्द को जो वरीयता प्राप्त हुई है वह उसी खर्च के कारण है और यह निकाह के कानून का आधार है।

(ब) तीसरे प्रकार की शर्तें। उनसे निकाह के समझौते की वास्तविकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा लेकिन पति यदि उसको पूरा नहीं करता तो निकाह निरस्त न होगा।

(स) तलाक का अधिकार सौंपने की स्थिति में महिला को शरीअत की ओर से यह अधिकार प्राप्त होगा। पति उस अधिकार को वापस नहीं ले सकता। वकालत वापस ली जा सकती है। तफ्वीज़ नहीं वापस ली जा सकती है।

(1) निकाह से पहले जो शर्तें तय हो जायें तो निकाह से उन्हें जोड़ना अनिवार्य होगा। उदाहरण के लिए यदि- मैं अमुक औरत से निकाह करूँ तो----

(2) या स्वीकृति (कुबूल) में शर्त लगी हो तब भी तफ्वीज सही होगी।

(3) निकाह के पहले काबीन नामा लिखा जाये तो निकाह से सम्बन्ध जोड़ना अनिवार्य न होगा और यह तफ्वीज़ सही होगी।

अधिकार सौंपने के साथ कुछ ऐसे लोगों के नाम रखे जा सकते हैं कि

उनके विरुद्ध शर्त स्वीकार करने की स्थिति में औरत को तलाक का अधिकार होगा ताकि औरत उसका अवैध लाभ न उठा सके। कुछ ऐसे लोगों के नाम दर्ज करने से कि उनके मानने पर औरत को तलाक का अधिकार हो तो शरीअत के उद्देश्य की रक्षा हो सकेगी। इस किताब के अन्त में इस का एक आदर्श संलग्न है।

(1) एक साथ तीन तलाक देने या तलाक का दुरूपयोग रोकने की एक उपाय यह हो सकती है कि दहेज का प्रचलन समाप्त किया जाये और तुरन्त महर (मुअज्जल) की अदायगी को प्रचलित करने का प्रयास किया जाए क्योंकि इस स्थिति में मर्द के पास दहेज की सामग्री आ जाती है और वह महर तुरन्त अदा नहीं करता है और कानूनी तौर पर औरत को महर के लेने में काफी कष्ट उठाना पड़ता है और मर्द तलाक देने में शेर हो जाते हैं।

(2) दूसरे निकाह पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए महर में भेद करना अस्वीकार्य है।

(3) मात्र यह शर्त लगाने से निकाह प्रभावित न होगा और पति के शर्त का पालन न करने पर निकाह निरस्त न होगा।

☆☆☆

निकाह में शर्त लगाना

मौ. अब्दुल जलील क़ासमी

गलत शर्तों से निकाह निरस्त नहीं होता इसलिए निकाह में लगाई गई ऐसी शर्त जिसका उद्देश्य निकाह के बाद आने वाले दायित्व से बचना हो तो इस शर्त के कारण निकाह निरस्त नहीं होगा। शर्त को देख कर कोई फैसला किया जायेगा जैसे अगर यह शर्त लगाई कि महर नहीं देगा तो भी फुकहा ने इसकी व्याख्या की है कि महर मिस्ल अनिवार्य होगा, यदि सम्बन्ध स्थापित करे या मर जाये।

अगर किसी महिला ने अपनी बारी अपनी सौत के लिए छोड़ दिया तो उसे वापस लेने का अधिकार है। (हिदाया, भाग-2, पृ.-324)

अल्लामा बुरहानुद्दीन लिखते हैं कि इसी प्रकार प्रतिदिन जीविका भी अनिवार्य होती है। अगर किसी महिला ने जीविका माफ कर दिया या जीविका की माफी (क्षमा) के साथ निकाह किया तो मेरे विचार में उसको जीविका माँगने का अधिकार होगा। (हिदाया, भाग-2, पृ.-329)

जहाँ निकाह में भिन्न-भिन्न शर्तें लगाई जाती हैं और इन से किसी पक्ष को लाभ हो और इससे निकाह पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता लेकिन यदि पति किसी नौकरी में है और उसका स्थानन्तरण होता है या उसे बाहर नौकरी मिल गई हो और निकाह में शर्त यह है कि पत्नी को बाहर नहीं ले जायेगा तो ऐसी स्थिति में वह शर्त को निरस्त कर सकता है और पत्नी को निकाल कर साथ ले जा सकता है।

लेकिन फैसले के तौर पर ऐसी शर्त को पूरा करने को अनिवार्य ठहराने की कोई गुन्जाइश नहीं है। और अगर ऐसी शर्त लगाई गई जिसको पूरा करने में दूसरे को हानि है तो ऐसी शर्त को पूरा करना अनिवार्य तो क्या, मेरे विचार में वैध भी

नहीं होगा। उदाहरणत: औरत यह शर्त लगाए कि पति अपनी अमुक पत्नी को तलाक देगा।

इन स्थितियों में यदि महर मिस्ल निर्धारित महर से अधिक है तो शर्त पूरी न होने की स्थिति में उसको महर मिस्ल मिलेगा।

तलाक का अधिकार सौंपने के सिलसिले में हजरत थानवी ने जो लिखा है मेरे विचार में वह पर्याप्त है मैं इसमें कुछ बढ़ाने की आवश्यकता नहीं समझता। (देखिए अल-हीलतुन-नाजिज़ा, पृ.-31-38)

तलाक एक नापसन्दीदा चीज है लेकिन कुछ स्थितियों में आवश्यक भी है। मुस्लिम समाज में इतना नहीं है जितना मशहूर है। लेकिन तीन तलाक, या तलाक की अधिकता को रोकने के लिए (अगर वास्तव में अधिकता हो) पाबन्दियाँ लगाकर तलाक को मुश्किल बनाना मेरे विचार में उचित नहीं है। जिस तरह से शरीअत ने तलाक को सरल बनाया है उसे सरल ही रहने देना उचित है। अमली तौर पर हमारे सामने ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि पति पत्नी में सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं और स्थिति ऐसी है कि दोनों में अलगाव आवश्यक है। लेकिन महर अधिक है और पति महर देने के डर से तलाक नहीं देता है। इस तरह औरत अनिश्चतता की अवस्था में रहती है या मजबूर होती है कि महर माफ करके तलाक प्राप्त करे। संभव था यदि महर कम होती तो पति तलाक दे देता और औरत महर पाने के लिए अधिकृत हो जाती।

तीन तलाक या तलाक के मामलों की अधिकता अशिक्षा और अनभिज्ञता के कारण है, इसके दुरूपयोग को रोकने के लिए महर की अधिकता मेरे विचार में समस्या का हल नहीं है बल्कि इसका हल समाज में लोंगों को इसकी जानकारी देना है और उन्हें इससे बचने की प्रेरणा देना लाभदायक और उचित होगा। इसके साथ साथ यदि महर इस तरह तय किया जाये कि यदि पति ने तलाक नहीं दी तो महर दस हजार अगर तलाक दी तो 20 हजार तीन तलाक दी तो 30 हजार। मेरे विचार में ये शर्तें सही होंगी और जैसी स्थिति होगी उसी के अनुसार महर अनिवार्य होगा।

अगर निकाह करते समय महर इस प्रकार निर्धारित की जाये कि इस पत्नी

के होते हुए अगर पति ने दूसरा निकाह किया तो इसका महर 20 हजार रूपये, और अगर इसके रहते हुए दूसरी औरत से निकाह न किया तो महर 10 हजार रूपये, मेरे विचार में ये दोनों शर्तें भी सही होंगी।

पत्नी के पैतृक स्थान पर रखने या ले जाने में एक हजार, और दो हजार महर निर्धारित हो तो साहिबैन का कथन है ''दोनों शर्तें जायज़ हैं अगर वह उसके साथ रहता है तो एक हजार और वहाँ से ले जाता है तो दो हजार रूपये। (हिदाया, भाग-2, पृ.-329)

मेरे विचार में पत्नी को रखने, ले जाने और उसके रहते हुए दूसरा निकाह करने या न करने में कोई अन्तर नहीं होगा। इसलिए जिस तरह साहिबैन के अनुसार पत्नी को मैके में रखने और ले जाने में दो शर्तें जायज़ हैं इसीतरह निकाह करने या न करने में भी दोनों शर्तें उचित और जायज होंगी।

पति को अधिकार है कि पत्नी को उस नौकरी से रोक दे जिससे कि पति के अधिकार का नुकसान होता हो लेकिन ऐसी नौकरी जिसमें पति के अधिकार की हानि की सम्भावना न हो तो ऐसी नौकरी से मना करने का कोई कारण नहीं, अगर पति ने निकाह के समय या उसके बाद ऐसी नौकरी की अनुमति दे दी तो अनिवार्य नहीं है कि वह इस अनुमति को वापस न ले चाहे निकाह के उद्देश्य नष्ट क्यों न हो जायें।

जब पत्नी घर में अकेली रहेगी और पति बाहर होगा, पत्नी के लिए घर में कोई काम न होगा तो इससे तरह तरह के शैतानी वसवसे और ऐसे ऐसे अनुचित विचार मन में उपजेंगे और पड़ोसी और अनजानों से सम्बन्ध का डर रहेगा। (रद्दुल मुख्तार, बाब-नफ़्का, भाग-2, पृ.-667)

☆☆☆

परिचर्चा:

निकाह में शर्त के सम्बन्ध में परिचर्चा

इस्लामिक फिक्ह अकेडमी के आठवें सेमिनार जो मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ में दिनांक 22–24 अक्टूबर 1995 को आयोजित हुआ 'इश्तेरात फिन् निकाह (निकाह में शर्त लगाना)'' एक महत्वपूर्ण विषय था। इस सिलसिले में प्रस्ताव तैय्यार कने के लिए एक उपसमिति (Sub Committee) बनाई गई उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव सेमिनार के प्रतिनिधियों से समक्ष प्रस्तुत किया गया जो कुछ संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया गया जो इस संकलन में देखा जा सकता है। विषय से सम्बन्धित ''अर्ज-ए-मसला (समस्या की प्रस्तुति)'' और प्रस्तुत प्रस्ताव पर जो चर्चाएं हुईं और विचारों का आदान प्रदान हुआ उनको टेप रिकार्ड की सहायता से नोट किया गया जो निम्नवत् है। टेप की खराबी के कारण यदि कुछ छूट गया हो तो संस्था उसके लिए खेद व्यक्त करती है।

उप-समिति के प्रस्ताव:

प्राकृतिक नियम के अनुकूल, मानव के लाभ-हानि को देखते हुए, संतुलन, न्याय और योग्यता के अनुसार अधिकार और कर्त्तव्य को निर्धारित करना इस्लामी शरीअत की प्रमुख विशेषता अपने आप में अद्वितीय है। इस्लाम के परिवारिक कानून में भी यही विशेताएं पाई जाती हैं। और मानव की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति और इसमें सामाजिक समस्याओं का संतुलित हल पाया जाता है। मगर अफसोस यह है कि शरीअत के न जानने और उस पर अमल करने में कोतही और दूसरी कौमों के रस्म व प्रथा का प्रभाव, और विशेष रूप से न्याय व्यवस्था न होने से हमारे समाज में कुछ पेचीदगियाँ पैदा हो रही हैं। जिनको हमें शरीअत का पालन करते हुए हल करना है। इस पृष्ठभूमि में निकाह

के साथ औरत को तलाक का अधिकार और महर की कुछ परिस्थितियों पर विचार किया गया और निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए गये।

निकाह के समय ऐसी शर्त लगाना जिनको शरीअत ने अनिवार्य नहीं करार दिया है और न मना किया है। बल्कि ऐसी शर्तों के माध्यम से मर्द अपने अधिकार से वंचित हो जाता है, ऐसी शर्तें मान्य हैं।

1. निकाह में ऐसी शर्तें लगाई जायें जो निकाह के कारण अनिवार्य होने वाले दायित्व और अधिकार पर बल देती हों तो वह वैध हैं और पति के लिए उनका पूरा करना अनिवार्य है।
2. निकाह के समय ऐसी शर्तें लगाना जो निकाह के उद्देश्य के विपरीत हों या शरीअत ने उनसे मना किया हो जैसे पति का जीविका न देने की शर्त लगाना या, दूसरी पत्नी को तलाक देना, या, दहेज और तिलक की शर्त लगाना, ऐसी शर्तें अवैध हैं।
3. इस्लाम ने मानव प्रकृति, विभिन्न आवश्यकताओं को देखते हुए बहुविवाह की अनुमति दी है लेकिन पत्नियों के बीच न्याय व सन्तुलन को अनिवार्य क़रार दिया है। अगर न्याय स्थापित न कर पाने का सन्देह हो तो एक ही पत्नी का आदेश दिया गया है। मौजूदा स्थिति यह है कि बहु-विवाह में अधिकतर पत्नियों के बीच न्याय नहीं हो पाता। दूसरी ओर पश्चिमी देशों के अनुकरण में बहु-विवाह को पूर्णत: प्रतिबन्धित करने के लिए कानून बनाने की माँग की जा रही है। हालाँकि यह स्वयं अधिकतर बुराई का कारण होता है। ऐसी स्थिति की आवश्यकता होते हुए बहुविवाह पर रोक और दूसरी तरफ बहुविवाह की स्थिति में न्याय का न होना और समाज में औरतों पर अत्याचार का चलन शरीअत की दृष्टि में स्वीकार्य नहीं है। इस पृष्ठभूमि में अकेडमी का यह सेमीनार फैसला करता है कि निकाह के समय उद्देश्य और आवश्यकता को देखते हुए शरीअत के अनुसार यह शर्त लगाई जा सकती है कि पति दूसरे विवाह की आवश्यकता पड़ने पर दारुल कजा या प्रमाणित या निर्धारित संस्था के समक्ष अपने दूसरे विवाह की आवश्यकता को प्रस्तुत करे और अनुमति प्राप्त होने के बाद ही दूसरा

विवाह करे ऐसी स्थिति में पति के लिए यह शर्त पूरा करना अनिवार्य होगा।

4. शरीअत ने तलाक का अधिकार मनुष्य की प्राकृतिक योग्यता और सामाजिक दायित्व को देखते हुए मर्द को दिया है जो विवेक और प्रकृति को देखते हुए उचित है फिर भी मर्द को यह अधिकार प्राप्त है कि वह स्वयं पत्नी को या किसी अन्य व्यक्ति को तलाक का स्वामी बना सकता है। ऐसी स्थिति में महिला को स्वयं अपने आप पर या तीसरे व्यक्ति को महिला पर तलाक लागू करने का अधिकार प्राप्त होगा। लेकिन अन्य व्यक्ति के तलाक लागू करने से पहले मर्द का तलाक का अधिकार समाप्त नहीं होगा। बल्कि मर्द स्वयं भी इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(5) पत्नी को तलाक का अधिकार सौंपने की तीन स्थितियां हो सकती हैं:

(क) निकाह से पूर्व तलाक का अधिकार सौंपने का काम किया जाये। ऐसी स्थिति में अनिवार्य है कि तलाक का अधिकार सौंपने को निकाह के शर्त के साथ जोड़ दिया जाए। जैसे अगर मैं तुमसे निकाह करूँ तो तुझको अमुक-अमुक शर्तों के साथ अपने आप पर इतनी तलाक लागू करने का अधिकार प्राप्त होगा।

(ख) निकाह के समय ही तलाक का अधिकार सौंपने का कार्य किया जाए इस स्थिति में अनिवार्य है कि तलाक का अधिकार सौंपने की शर्त पत्नी या उसके अभिभावक की तरफ से प्रस्तुत हो और पति निकाह कुबूल करते समय इस शर्त को भी स्वीकार कर ले।

(ग) निकाह के बाद भी तलाक देने का अधिकार सौंपा जा सकता है।

(घ) तलाक का अधिकार सौंपने के बाद औरत अपने तलाक की स्वामिनी हो जाती है इसलिए यह समस्या संवेदनशील है और संदेह है कि यदि अधिकार को सौंप कर कोई शर्त न लगाई जाये तो उस अधिकार का दुरुपयोग होने लागेगा, इसलिए यह अनिवार्य है कि ऐसी पाबन्दियाँ लगा दी जायें कि उसका शरीअत और सामाजिक आवश्यकताओं और उद्देश्यों

के अनुकूल ही प्रयोग किया जा सके।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उचित होगा कि दारुल क़ज़ा या मुस्लिम समाज सुधार समिति इस काम को करे, जो प्रमाणित करे कि पति ने पत्नी के अधिकारों की अदायगी में कोताही की है और वह दोनों के बीच अलगाव को उपयुक्त समझती है। इसके बाद ही औरत को अपने ऊपर तलाक लागू करने का अधिकार प्राप्त होगा। अगर वहाँ कोई संस्था न हो तो कुछ बुद्धिमान, दीनदार और दीनी मामलों की जानकारी रखने वाले लोगों के नाम लिखे जा सकते हैं जो पति की ओर से अन्याय और पत्नी के अधिकारों की अदायगी में कमी महसूस करें तो पत्नी को अपने ऊपर तलाक लागू करने का अधिकार प्राप्त होगा।

(च) तलाक का अधिकार सौंपने में सुन्नत के अनुसार तीन तलाक या एक तलाक़-ए-बाइन (अलग कर देने वाला) का अधिकार सौंपा जाये। क्योंकि एक बार में तीन तलाक देना तलाक़-ए-बिद्अत (ग़लत तरीके से तलाक) और घोर पाप (गुनाह) है।

(छ) तलाक को कम करने और दुरूपयोग से बचाने के लिए बेहतर है कि जहाँ दारुल क़ज़ा या कोई काबिले एतेबार संस्था मौजूद हो वहाँ तलाक का अधिकार महिला के बजाए संस्था को सौंपा जाये। अगर पति पत्नी को अलग करने को उपयुक्त समझे तो वह औरत पर एक तलाक-ए-बाइन लागू कर दे।

(7) अगर किसी मामले में मर्द की ओर से अन्याय का सन्देह हो तो यह ठीक है कि निकाह की दो स्थितियों के साथ दो महरें निर्धारित की जाऐं।

उदाहरण के लिए यदि कहा जाये कि अमुक महिला का महर 20 हजार है अगर उसके होते हुए पति ने दूसरा निकाह किया, या पहली पत्नी को तलाक दे दे, और अगर ऐसा नहीं किया तो महर दस हजार होगा ऐसी स्थिति में यह शर्त मान्य होगी। फिर भी बेहतर यह है कि इस तरह की शर्तें लगाने के बजाए यह पाबन्दी लगा दी जाये कि अगर मर्द ने दारुल क़ज़ा या अमुक संस्था या व्यक्तियों की अनुमति बिना दूसरा निकाह किया और तलाक दी तो महर 20

हजार अन्यथा 10 हजार ऐसी स्थिति में अगर उपरोक्त संस्था या व्यक्ति ने शरीअत के उद्देश्य और आवश्यकता को देखते हुए महसूस किया कि वास्तव में उसको दूसरे विवाह की आवश्यकता है या तलाक देने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं और इसी आधार पर अनुमति दे दी तो निर्धारित महर 10 हजार रू. ही अदा करना अनिवार्य होगा।

(8) अगर पति पत्नी में मतभेद हो जाये तो शरीअत ने प्रशासक या तीसरे पक्ष (सालिस) की व्यवस्था दी है। ताकि इसके माध्यम से पति-पत्नी के बीच जितना हो सके समझौता और मेल मिलाप का रास्ता निकाला जाए। यदि दोनों के बीच मिलाप न हो सके और शान्ति से रहना असंभव हो तो अलगाव का रास्ता अपनाया जाये।

प्रस्ताव पर उलमा की राय

मौलाना सैय्यद निज़ामुद्दीन साहबः

इस समय हमारे सामने जो हालात हैं उनके अनुसार निकाह नामा में शर्त और तलाक का अधिकार सौंपने का मसला दर्ज करना बिल्कुल उचित नहीं है क्योंकि आज कल यूँ ही रिश्ते नहीं मिलते हैं फिर इन शर्तों के साथ कौन निकाह पर राजी होगा। फिर निकाह का वातावरण आमतौर पर खुशी का होता है और भरोसा और प्यार का वातावरण होता है और ऐसे अवसर पर तलाक का अधिकार सौंपने की बात से आपसी विश्वास को ठेस लगेगी। इससे मुझे इन्कार नहीं कि शरीअत में तलाक की व्यवस्था है लेकिन तलाक का अधिकार सौंपने का हक लिखा जाना आवश्यक नहीं और न उचित है बल्कि शरीअत के उद्देश्य के विरुद्ध भी है। इससे तलाक कम होने के बजाय बढ़ेगा, और मर्द की तरफ से होने के बजाये औरतों की तरफ से अधिक होगा इसलिए आप मेरे विरोध को नोट कर लें मैं इसका बिल्कुल समर्थन नहीं करता हूँ कि निकाह के समय औरत को मर्द की तरफ से यह अधिकार दिया जाये।

मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम साहब

यहाँ जिस समस्या पर चर्चा हो रही है उस पर शरीअत के दृष्टिकोण से विचार करना है। यदि औरत कहती है कि मैं आप से इस शर्त पर निकाह करती हूँ कि अमुक अमुक स्थिति में मुझे अधिकार होगा कि मैं अपने ऊपर तलाक लागू कर लूँ या काजी या बिरादरी का बड़ा बूढ़ा इस बात पर संतुष्ट हो जाये कि मुझ पर अत्याचार हो रहा है तो मैं अपने ऊपर तलाक लागू कर लूँ और मर्द ने कहा मैंने तुम्हारी शर्त स्वीकार कर लिया तो यह अधिकार सौंपना वैध होगा या नहीं।

मौ. रिज़वान-अल-क़ासमी साहब।

मैं इस अवसर पर सबसे पहली बात यह कहना चाहूँगा कि यह विद्वानों और मुफ्ती लागों की सम्माननीय सभा है इसमें कोई ऐसा फैसला न होना चाहिए जो भारत की वर्तमान परिस्थितियों में बहुत से बिगाड़ और विवाद का कारण बने, अगर तलाक का अधिकार सौंपने जैसे मसले को निकाह नामे में सम्मिलित कर दिया गया, और मेरा यह भी एहसास है कि यह चीजें जो आयेंगी वह इस बात का एहसास दिलाती हैं कि तलाक का अनुपात बढ़ गया, मानो, अरुण शूरी आदि मुसलमानों के सम्बन्ध में जो लिखते आ रहे हैं हम उस दुष्प्रचार से प्रभावित हो गये हैं और इसी कारण से हम ये तमाम छोटी छोटी बातों पर विस्तार से चर्चा कर रहे हैं। स्पष्ट है कि आप लोग आर्थिक कष्ट का उल्लेख करते हैं कि सबसे बरकत वाला निकाह वह है जिसमें खर्च कम हो और आर्थिक कष्ट न हो। लेकिन ऐसा निकाह जिसमें हम शर्त लगाएं वह तो मानसिक रूप से बोझ का कारण बनेगा, तो ऐसा निकाह कैसे पसन्द किया जा सकता है? मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि जैसे पश्चिमी देशों में मुसलमानों और इस्लामी शिक्षाओं के विरुद्ध दुष्प्रचार किया जा रहा है इससे इसमें बहुत हद तक उसको पुष्ट करने वाले बहुत से तत्व मौजूद हैं। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि अगर अधिकार सौंपने की बात आती है उसकी स्थिति चाहे जैसी हो तलाक का अनुपात बढ़ जायेगा और समाज नहीं सुधरेगा बल्कि बिगाड़ की तरफ चला

जायेगा। इसलिए हमें अत्यन्त सावधानी से मात्र वैध और अवैध नहीं देखना चाहिए। हालात को देखते हुए सबसे बेहतर व्यवस्था तो वही है, अभी भी तलाक का अनुपात पूरी दुनिया में मुसलमानों में सब से कम है

हाँ, दारुल क़ज़ा की माँग को आगे बढ़ाया जाये, फैसले का जो तरीका हो सकता है उसको इस भावना से बढ़ाया जाये। मैं जो कुछ प्रस्तुत करना चाहता था वह यह है कि शर्त हो, लेकिन यह अधिकार मर्द अपने अतिरिक्त किसी और को दे सकता है और उसमें अपना नायब बना सकता है। इसलिए यदि औरत निकाह के बन्धन में विशेष शब्दों के साथ इस अधिकार को तलाक के अधिकार के रूप में प्राप्त करना चाहती है तो कर सकती है। परन्तु अच्छा यही होगा कि यह अधिकार उसे पूरी तरह न दिया जाये बल्कि कुछ विशेष शर्तों पर दिया जाये।

इस्लामिक फिक्ह अकेडमी की यह विशेषता और बड़ाई है कि उसने विरोध को सर्वथा सहन किया है और सुना है और यही इसकी पहिचान है।

मौ. सैय्यद निज़ामुद्दीन साहब

दूसरी बात जो एक से अधिक निकाह के सम्बन्ध में कही गई है उस पर भी विचार करना चाहिए शरीअत ने एक से अधिक निकाह की अनुमति दी है, आदेश नहीं दिया है। अगर किसी ने गलत तरीके से दूसरा निकाह किया है तो उसका दण्ड आप क्या निर्धारित कर सकते हैं समाज उसको क्या सजा दे सकता है? और उस पर कैसे रोक लगाई जा सकती है? इसको अवश्य कीजिए लेकिन फिक्ह की दृष्टि से मात्र वैधता के कारण केवल 10 हजार या 20 हजार महर दे देना समस्या का हल नहीं है। यह तो कुछ नहीं है, पति 50 हजार दे सकता है लेकिन क्या इससे न्याय मिल जायेगा?

हाँ, मध्यस्थता (सालिसी), की जो बात कही गई है वह सारी समस्या का हल है कि भविष्य में पति पत्नी में कभी कोई मतभेद हुआ तो इसमें न लड़की जल्दी करे न लड़का जल्दी करेगा। बल्कि यह कुरआन के आदेश के अनुसार अपने अपने परिवार से दो मध्यस्थ चुन लेंगे और अपने परिवार में मध्यस्थ न हों

तो दारुल कजा या प्रमाणित उलमा से मरामर्श के बाद ही कोई कदम उठाएं। यह अवश्य लिखना चाहिए क्योंकि इसकी अनुमति आप को शरीअत ने दी है, और इसे हल करार दिया है। मैं इसका समर्थन करता हूँ।

कोई महिला तलाक की समस्या हो, या विरासत या खुलअ का मेरे विचार में आवश्यक यह है कि लोगों को शिक्षित किया जाये उनके मस्तिष्क में यह बात बैठा दी जाये कि यह ग़लत है, यह सही है उस समय यह समाज सुधरेगा और सबसे बड़ी चीज होती है अल्लाह का डर, जब इन्सान में अल्लाह का डर न हो, आखिरत का डर न हो वहाँ न कानून काम आता है न कोई उपाय, इनसान अपना रास्ता स्वयं निकाल लेता है सबसे पहली चीज यह है कि हम इस्लामी कानून से अनभिज्ञ हैं, न तो महिलायें जानकार हैं न मर्द जानकार हैं। तो पहली आवश्यकता यह है कि उनको किसी तरह, जैसे उचित हो, शिक्षित कराएं।

मौ. मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी

मैं आप सज्जनों से पूछ रहा हूँ कि अगर हम इस विस्तार में जाने के बजाए केवल तीन नियमों का उल्लेख कर दें कि वह शर्तें जो निकाह के उद्देश्य के अनुकूल हैं उनमें कोई समस्या नहीं, और जो शर्तें निकाह के उद्देश्य के विरुद्ध हैं और उनसे मना भी किया गया है वह अवैध हैं, ऐसी शर्तें, न जिनका आदेश दिया गया है और न उनसे रोका गया है तो उनका लगाना वैध होगा। अगर इन तीन बातों पर हम इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें तो कैसा रहेगा?

मौ. क़ारी इम्दादुल्लाह साहब

एक छोटी सी समस्या यह है कि तलाक, खुलअ और फस्ख (निरस्त) तीनों चीजें इसी उद्देश्य से शरीअत में रखी गईं कि बाद में कोई ऐसी स्थिति आ जाये तो मर्द औरत दोनों इससे लाभान्वित हों। जब वह इसी उद्देश्य से बनायें गये हैं तो फिर पहले से उल्लेख करने का क्या लाभ है?

क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी साहब

मैं इस पड़ताल में इस नतीजे तक पहुँचा हूँ कि दूसरा निकाह जैसा कि

मैंने 90 प्रतिशर्त कहा था, मैं इससे आगे भी जाने के लिए तैयार हूँ कि दूसरे निकाह की स्थिति में पहली पत्नी के साथ न्याय तो बहुत दूर की बात है अनिवार्य हद तक भी उसके साथ न्याय नहीं होता है इतनी बड़ी सामाजिक वास्तविकता पर आप ध्यान नहीं देना चाहते हैं और न उसका हल निकालना चाहते हैं, तो स्पष्ट है, कि हम उसी दायरे में हल निकालेंगे जहाँ तक फुकहा ने गुंजाइश रखी है। कानून से हम बहु-विवाह (Polygamy) को मना करा दें कि यह हराम है ऐसा कोई नहीं कर सकता, तो स्पष्ट है कानून बनेगा तो आज के हालात में जो बहु विवाह की आवश्यकता है वह पूरा नहीं हो सकेगी। और समाज मर इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। अगर आप चाहेंगे तो मुझे इसमें कोई संकोच नहीं है कि इस पूरी चर्चा के सारे प्रस्तावों को निरस्त कर दिया जाये तो महने कोई चर्चा ही नहीं की। हमें हाल में हर एक ऐसी बात कहनी है जिस पर साधारणत: सहमति होनी चाहिए। इस सामाजिक वास्तविकता जिसकी तरफ एक बहन ने ध्यान दिलाया, अल्लाह उनको अच्छा बदला दे, लेकिन, जैसा कि आप सबको ज्ञात है कि हमने मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के प्लेटफार्म से अमारत-ए-शरईया से या जहाँ जहाँ भी लोग स्संस्थाएं चला रहे हैं वहाँ मुसलमानों से यह बार बार कह रहे हैं कि न्याय करो, इन्साफ दो। उनको इन चीजों की तरफ बुला रहे हैं वह सब कुछ सही है, लेकिन इसके बाद भी घटनायें घटित हो रही हैं। इसके लिए कोई कानूनी उपाय तलाश करनी होगी।

मैंने उन लोगों से कहा कि तुम अगर वास्तव में मुसलमानों को सन्तुष्ट कर दो कि यूनीफार्म सिविल कोड (धारा-44) के अनुसार शरीअत में कोई परिवर्तन नहीं करोगे तो मौजूदा सामाजिक समस्याओं का हल इस्लाम स्वयं हल करने की स्थिति में है, यह हमारा भय है और भय के कारण कदम बहुत फुँक फूँक कर रखना पड़ता है, इसलिए निकाह में शर्त लगाने के लिए यह कुछ सिद्धान्त बनाये जाते हैं इसी में से एक नियम महर की कमी या बढ़ाने का है। दो स्थितियों में दो तरह का महर निर्धारित हो सकता है। मुझे जहाँ तक याद है कि यह लोग अधिक बताऐंगे कि कुछ और मसलकों के फुकहा ने भी महर में कमी व अधिकता की बात लिखी है। हम्बली उलमा का मत शर्त लगाने के बारे में

सर्वाधिक वैधता पर जोर दिया है। इन परिस्थितियों में आप लोग सोचें। दूसरी समस्या बिल्कुल अलग है कि निकाह नामा क्या हो, क्या नहीं हो? यह सपष्ट है बिल्कुल अमली चीज है, मर्द कहीं पर राजी होगा कहीं पर राजी नहीं होगा। निकाह नामा की बहस बिल्कुल अलग है मैं इस बारे में मात्र तीन प्रकार के नियम बयान कर रहा हूँ कि किस किस्म की शर्तों का निकाह में लगाना वैध है और किस किस्म की शर्तें लगाना अवैध है और कौन सी शर्तें मान्य हैं और कौन सी अमान्य हैं। ये तीन किस्में जो तमाम फुकहा ने लिखी हैं, उनको लिख कर सैद्धान्तिक रूप में छोड़ दिया जाये। इसके बाद अगर विस्तार में जाना है, औरत नौकरी करना चाहती है, या कर रही है इसमें आप क्या आदेश देंगे तो पति यदि यह शर्त लगा दे कि वह नौकरी नहीं करेगी, तो पत्नी को नौकरी से रोक सकता है या नहीं, या किस तरह की नौकरी करेगी और किस तरह की नहीं। इन समस्त विस्तृत वर्णन से स्पष्ट है कि विस्तार को हम आज नहीं निर्धारित कर सकते। इसको देखते हुए आप लोगों का जो परामर्श हो उसके अनुसार प्रस्ताव लिखा जाये या निकाह में शर्त लगाने की शर्तों को निरस्त कर दिया जाये।

मुफ़्ती शब्बीर साहब

हालात को देखते हुए कुछ बातें कहना चाहता हूँ कि हमारे यहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश (मुरादाबाद) में शरीअत विभाग का न्यायालय मौजूद है और हम न्यायालय में काम करते हैं। तो यह बात मैं कहना चाहता हूँ कि मैं स्वयं झेल रहा हूँ। मैं इसी समस्या का वर्णन करना चाहता हूँ हमारे यहाँ जितने मामले आ रहे हैं उनमें तमाम मामलों में 70% औरतों के अन्याचार के कारण यह स्थिति आती है और अधिक से अधिक 20% या 30% मामले ऐसे हैं जिनमें पति के अत्याचार के कारण यह स्थिति आती है। हमारे यहाँ पूरे साल में दस या 20 मामले आ जाते हैं दूसरे जगहों से भी आते हैं। इस समय जो हमारे यहाँ पाँच मामले चल रहे हैं उनमें दो पति की तरफ से और तीन औरत की तरफ से।

मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवी

यह जो पूरी चर्चा चल रही है विषय से हट गई है। समस्या क्या है और

शरीअत का आदेश क्या है? इसके बजाये हालात और उद्देश्य क्या हैं इस पर बात चल रही है। मेरा अपना विचार है कि हमने वापसी का सफर प्रारम्भ कर दिया है। हमारे पिछलों ने जिन समस्याओं के आधार पर गुंजाइशें दी और बहुत सी समस्याओं को उन्होंने हल किया उन्हीं समाधानों की तरफ हम शनैः शलैः (धीरे-धीरे) हम वापस होते जा रहे हैं। ऐसा झुकाव हम में पाया जा रहा है। अल-हीलतुल नाजिज़ा जो लिखी गई है उसमें तमाम उलमा उस समय के वरिष्ठ मुफ्ती थे वह लोग वह थे कि जिनके पास पूरे भारत से ही नहीं बल्कि बाहर से सैकड़ों हजारों फतवा पूछने के पत्र आया करते थे और उन फतवों पर आधारित कई खण्डों में पुस्तक प्रकाशित हो चुकी हैं। हजरत थानवी, मुफ्ती शफी साहब मौलाना अब्दुल करीम साहब आदि बहुत से मुफ्ती थे जो फतवा देते थे। और हर एक के फतवों के कई कई खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं, इन लोगों को उस समय हालात का पूरा अनुमान था। क्या वास्तव में औरतों पर अत्याचार हो रहा है या नहीं हो रहा है? इन परिस्थितियों में उन लोगों को सोचना पड़ा कि जो गुंजाइश शरीअत में है और जिस के आधार पर हम प्रतिबन्ध लगा सकते हैं ताकि पति अनावश्यक तलाक न दे और महिला को निकाह के बाद इस तरह छोड़ दिया जाता है कि कभी कभी निकाह हो गया और पति देश से बाहर चला गया और वापस नहीं आ रहा है और निकाह ही कब होता है कि साहब वीजा आ गया है, निकाह कर दिजिए, मेरा बेटा जाने वाला है। अब निकाह के बाद उनके पति चले जाते हैं और अधिकतर ऐसा होता है कि वह कई वर्ष तक वापस नहीं आते हैं। क्योंकि लखनऊ में दारुल क़ज़ा से मेरा सम्बन्ध है ऐसे मुकदमे बहुत आते हैं, वहाँ की औरतें दावा करती हैं कि निकाह के चार वर्ष हो गये, दस साल हो गये पति हाल नहीं पूछ रहा है। इधर पति के घर से उसकी माँ, बहनें शिकायत कर रही हैं कि हम लेने आते हैं परन्तु उसने नाफरमानी किया। औरतें अनिश्चय की स्थिति में हैं, ये परिस्थितियाँ उन सज्जनों के समय में थी उनका हल उनके सामने नहीं था, दारुल क़ज़ा नहीं थे। इन कठिनाइयों को हल करने के लिए इन सज्जनों ने प्रयास किया और बहुत अद्भुत कर्त्तव्य पूरा किया। हज़रत भानवी के समय में शरई अदालत स्थापित करने की बात हुई, अब स्थिति यह है आप मुझे

पूरी ईमानदारी से बतायें कि इस जमाने में जो अत्याचार औरतों पर हो रहे हैं, क्या अत्याचार में कमी आ गई हैं? और उस समय स्थिति यह थी कि सामाजिक बन्धन मौजूद था, अगर कोई तलाक दे तो बिरादरी से बाहर, उसका खाना पीना बन्द, इन बन्धनों के कारण तलाक देने का साहस वह आसानी से नहीं जुटा पाता था। आज हालात यह है कि आदमी स्वतन्त्र है जो चाहे करे उस पर किसी का दबाव नहीं। सामाजिक दबाव समाप्त होने के कारण कुछ बदलाव आया है और अत्याचार में बढ़ोत्तरी हुई है। मैं आप से कहता हूँ कि यह दुष्प्रचार जो लोग कर रहे हैं कि तलाक़ का अनुपात इतना और इतना है हम उससे बिल्कुल प्रभावति नहीं हैं। अल्लाह की कृपा है और हमारा मुस्लिम समाज अब भी उन से अच्छा है और हर तरह से हमारे मुस्लिम समाज को भी इसका अधिकार है। मुस्लिम समाज में औरतों को जो न्याय मिल रहा है वह किसी समाज में नहीं मिल रहा है। लेकिन वास्तविकता यह है कि अत्याचार हैं और जिन सज्जनों का सम्बन्ध दारुल क़ज़ा से है अभी कल बात चीत चल रही थी, मुफ्ती हबीबुल्लाह कासमी बैठे हुए हैं आज़मगढ़ में रहते हैं वहाँ के हालात बयान कर रहे हैं कि हर घर से लोग बाहर गये हुए हैं और पता नही क्या क्या हालात हैं? कहते हुए शर्म आती है, तो प्रश्न यह है कि वर्तमान हालात को हम कब तक छिपायेंगे? हमारे फैसले के आधार पर और हमारे शर्त लगाने के आधार पर यह प्रभाव पड़ेगा वह प्रभाव पड़ेगा। अगर यह सच है कि अत्याचार हो रहे हैं और तलाक देने में असावधानी बरती जा रही है तो इसके बजाय कि यह प्रभाव पड़ेगा वह प्रभाव पड़ेगा, इसको रोकने का प्रयास क्यों न करें? यह तो मैंने उद्देश्यों की बात कही, जहाँ तक समस्या की बात है उस में क्या गुंजाइश है और किस सीमा तक गुजाइश है, कौन सी शर्तें लगाई जा सकती हैं? तो मेरा कथन यह है कि महर में कमी या अधिकता की जो बात है, इस कमी या अधिकता की बात को साहिबैन ने अपनाया है। तो मेरा यह विचार है कि यह समस्या का समाधान नहीं है। यदि एक आदमी शर्त लगाकर निकाह नहीं करना चाहता तो हम अनिवार्य नहीं कर रहे हैं कि तुम्हें शर्त लगाकर ही निकाह करना है, समस्या मात्र इतनी है कि जहाँ पर दोनों पक्ष शर्तों को स्वीकार करें तो शरीअत में इसकी

अनुमति है या नहीं, यह शर्तें लागू हो सकती हैं या नहीं? मेरा उद्देश्य यह है कि वर्तमान स्थिति का एक स्वच्छ चित्र हमारे सामने प्रबल रूप में आया है, मुझे दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि इन अत्याचारों में जो बढ़ोत्तरी हुई है उसके कारण आवश्यक है कि दारुल क़ज़ा पूरे देश में हो। दु:ख की बात यह है कि इस दिशा में बहुत धीमी गति से काम हुआ है। बुजुर्ग यहाँ बैठे हैं वह इस पर ध्यान दें, और देखें कि दारुल क़ज़ा कहाँ कहाँ स्थापित है? बिहार और उड़ीसा में यह व्यवस्या स्थापित है लेकिन सम्पूर्ण भारत में इस दिशा में बहुत धीमी गति से काम हो रहा है, अगर दारुल क़ज़ा के अभियान को हम आगे बढ़ाते तो तलाक में कमी आती और तलाक का दुरूपयोग न होता, सम्पूर्ण परिस्थिति को देखते हुए हमें इस समस्या पर विचार करना चाहिए। और प्रेस का यह प्रभाव पड़ेगा, यह आधार बनेगा, मेरे विचार में यह ठीक नहीं है, और मौलाना हजरत निजामुद्दीन साहब ने जो बात कही है मध्यस्थता वाली बात भी, इस बात में भी अन्तत: तलाक का उल्लेख होगा, अगर निकाह के समारोह में किसी भी तरह से तलाक का उललेख करना अच्छा नहीं है, इससे माहौल बिगड़ेगा तो मध्यस्थता की जो हम बात लायेंगे उस समय भी माहौल खराब होगा, बात वही पैदा होगी, चाहे फैसले बात लायें या शर्त की बात लायें।

हकीम ज़िल्लुर्रहमान साहब

इसका समाधान यह है कि सारे बिन्दु रिश्ता तय करते समय निर्धारित कर लिए जायें निकाह के समय नहीं।

मुफ़्ती नसीम साहब

इस मामले में बात उलझती जा रही है, क़ाज़ी साहब ने समस्या को जिस तरह प्रस्तुत किया है, मात्र उसी दृष्टिकोण पर हम और आप विचार करें, निकाह की शर्तों में जो विस्तार है, दो शर्तों पर तो सर्वसम्मति है, उनमें कोई मतभेद नहीं है। केवल एक हालत में जिस पर हमको और आप को विचार करना चाहिए। जिन सज्जनों को आपत्ति है उनको नोट कर लेना चाहिए। विशेष रूप से जो लोग मुफ्ती हैं, उसे राय लेनी चाहिए, तीसरी स्थिति ऐसी शर्त लगाना है जिसमें पति

या पत्नी को लाभ हो और शरीअत ने उसको हराम करार न दिया हो तो ऐसी शर्त निकाह में लगाना ठीक होगा या नहीं? और केवल इस शर्त का शरीअत में क्या महत्व होगा? यह बात स्पष्ट है कि हनफी फिक्ह, शाफई या मालिकी में अनिवार्य की बात नहीं मिलती बल्कि हम्बली फिक्ह में यह स्पष्ट है कि शर्तें लगाना सही है और पति पर उनका पूरा करना अनिवार्य है। इस पर विचार करना चाहिए कि वर्तमान स्थितियों में इसे स्वीकार किया जा सकता है अथवा नहीं।

मौलाना मुहम्मद रिज़वान अल क़ासमी साहब

मुझै यह कहना है, चूँकि परिस्थितियाँ हैं घटनायें दोनों तरफ हैं, औरतों के भी अत्याचार कम नहीं हैं इसकी बहुत सी दलीलें प्रस्तुत की जा सकती है इस समस्या पर नये तरीके से उसके उद्देश्य पर विचार करके उसकी व्याख्या की जाये और यह देखा जाये की उसकी व्याख्या करना बेहतर है या उसे रोके रखना बेहतर है। जो भी स्थिति हो उस पर नये सिरे से विचार किया जाए। देश के हालात को देखा जाये, शहर के हालात में औरतों के बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि बहुत अधिक अत्याचार हुए हैं परन्तु पति उसे तलाक नही दे सकता क्योंकि तलाक देगा तो बहुत सी कठिनाइयों में घिर जायेगा, कानूनी तौर पर, सामाजिक रूप से और उसके अपने सम्बन्धों के आधार पर, इसलिए इसकी व्याख्या और बयान से पहले इसके लाभ और उद्देश्य पर नये सिरे से विचार किया जाए।

मौ. ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी साहब

ऐसा लगता है कि चर्चा यह मान कर चल रही है कि हर निकाह से पहले कोई न कोई शर्त चाहे वह निकाह से जुड़ी हो या महर से सम्बन्धित हो लगाई जायेगी। वास्तव ऐसी स्थिति सामने आती है कि कभी कभी तलाक का अधिकार सौंपने के माध्यम से या महर में शर्त लगाने के माध्यम से रिश्ते को जारी रखने में मदद मिलती है, दारुल क़ज़ा में हमारा अनुभव यह है कि कभी कभी ऐसा होता है कि पति पत्नी के बीच किसी कारणवश अलगाव हो गया, बच्चों को ध्यान में रखते हुए हम चाहते हैं कि यह सम्बन्ध जारी रहे। निकाह के

नवीकरण का अवसर बाकी रहता है लेकिन औरत अपने लिए खतरा महसूस करती हैं ऐसे अवसर पर हम लोग तफ्वीज-ए-तलाक का लाभ उठाते हुए कुछ शर्तें लगाकर औरत को एक बार फिर इस बात पर तैयार करते हैं कि उजड़े हुए घर को बसाने का प्रयास किया जाये। मेरा विचार है कि इस समस्या को एक ही पहलू से देखा जा रहा है, इस प्रस्ताव के कारण मर्द इस बात पर मजबूर नहीं हो जाता कि बिना कारण और किसी भी तरह शर्तों को स्वीकार ही करे और शर्त के साथ महर को भी वह स्वीकार ही कर ले यह तो उसकी इच्छा पर है चाहे तो इस प्रकार का निकाह स्वीकार करे और चाहे तो न करे। असाधारण परिस्थिति में अनुभव के आधार पर इससे लाभ उठाया जायेगा। जब लोगों को यह मालूम होगा कि अमुक व्यक्ति से रिश्ता करने में यह खतरा है कि इस प्रकार की शर्तें लगाकर भविष्य में होने वाली हानि को कम किया जा सकता है, न निकाह नामा में इस विषय को लाना है और न निकाह के लिए इसको स्थायी सिद्धान्त करार देना है इसलिए कि यह बात समझ से बाहर है और उद्देश्य के प्रतिकूल कैसे है? साधारण स्थिति में और विशेष रूप से देहाती क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा की कमी है, स्थिति वह है जो क़ाज़ी साहब ने फरमाया, हमारे यहाँ हैदराबाद में काफी मुकदमें आते हैं, अधिकतर फैसला औरत के पक्ष में करने पर क़ाज़ी विवश हो जाता है। हर जगह के हालात भिन्न हैं, मौलाना मुफ्ती नसीम साहब ने जो बात कही कि हनफी मत के अनुसार निकाह के समय लगाई गई शर्त को पूरा करना अनिवार्य नहीं है तो ऐसा नहीं है। अगर किसी व्यक्ति ने ऐसी शर्त को स्वीकार कर लिया है तो इमाम अबू हनीफा के मतानुसार उसका भी पूरा करना अनिवार्य है। अल्लामा ऐनी और अल्लामा कश्मीरी का स्पष्टीकरण मौजूद है कि वह दीन के अनुसार अनिवार्य है परन्तु न्यायालय के अनुसार अनिवार्य नहीं है तो हनफी और इम्बली के बीच अनिवार्यता और पूरा करना आवश्यक होने या न होने में मतभेद नहीं है। इसका फल और प्रभाव क्या होगा? हम्बली दृष्टिकोण से औरत को अलग होने के लिए दावा करने का अधिकार प्राप्त होगा। और हनफी दृष्टिकोण से निर्धारित महर के बजाए महर मिस्ल का अधिकार प्राप्त होगा अन्यथा उनको पूरा करना दोनों मतों से अनिवार्य है। इस

लिए जो प्रस्ताव लिखा गया है वह बहुत सावधानी से लिखा गया है और हर बिन्दु पर यह प्रयास किया गया है कि महिलाएं तफ्वीज़-ए-तलाक़ का दुरूपयोग न कर सकें, या निर्धारित महर का प्रयोग बिना अवसर न कर सकें। इस शर्त में जो वाक्य लिखे गये हैं उसमें मात्र यह लिखा गया है कि शर्त को पूरा करना केवल मर्द पर अनिवार्य है। बस यहीं पर प्रस्ताव खामोश हो गया है। और इस प्रकार वास्तविकता की अनदेखी करके केवल संभावित खतरों के कारण जो आसानियां हम औरतों को दे सकते हैं वह न दें तो जो इस देश में शरीअत में हस्तक्षेप करने के लिए घात लगाए बैठे हैं और जो चाहते है कि इस देश में मुसलमानों की धार्मिक (दीनी) पहिचान शेष न रहे उनको यह अवसर मिलेगा कि वह अधिक से अधिक हमारे विरुद्ध दुष्प्रचार सामग्री जुटायें और देश के जनमत को हमारे विरुद्ध भड़कायें। ऐसा नहीं है कि इस्लामी शासन अगर होता तो हमारे लिये कानून को लागू करने में आसानी होती और भारत में मुसलमानों के हाथ में सत्ता नहीं है इस लिए इस प्रकार के कानून बनाना उद्देश्य के प्रतिकूल है। मैं समझता हूँ कि भारत में जैसी परिस्थितियाँ हैं उन में यह हालात की अधिक माँग है इस तरह के प्रावधानों का लाना। अगर इस्लामी शासन होता और इस्लाम की साफ सुथरी सरल न्याय व्यवस्था होती तो इन शर्तों की कोई आवश्यकता नहीं होती, वहाँ फारूकी कोड़ा काम करता, न महर में शर्त की आवश्यकता होती न निकाह के साथ किसी शर्त की आवश्यकता होती, इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि वास्तविकता को ध्यान में रख कर फैसला करें, इन तमाम शर्तों के बावजूद किसी चरण (मरहले) में मर्द विवश नहीं है। उसे शर्त को स्वीकार करने या न करने का अधिकार ह। ठीक है औरतें अत्याचार करती हैं परन्तु मर्द को तलाक देने का अधिकार ह, जिन परिस्थितियों में वह महिलाओं से तंग हो और उनमें अवज्ञा की ओर झुकाव हो।

सुल्तान अहमद इस्लाही:

मैं तीसरे प्रस्ताव का भरपूर समर्थन करता हूँ और यह प्रस्ताव बहुत मुनासिब है, यह बात कहना कि अमुक प्रस्ताव लाने से कौन सा न्याय स्थापित हो

जायेगा? वास्तव में एक गलत बहस है। कानून और नैतिकता का जो अन्तर है, उसको ध्यान में नहीं रखना है, नैतिकता की कमी को कानून पूरा नहीं कर सकता है, उद्देश्य यह है कि वैध नियम बनाने के माध्यम से अगर कुछ अनैतिकता को रोका जा सकता हे तो फिक्ह अकेडमी का यही क्षेत्र है, और इस पृष्ठभूमि में यह चीज बहुत मुनासिब है। गड़बड़ी (Confusion) इस कारण हो रही है कि हमारी दृष्टि कुछ विशेष चीजों पर केन्द्रित है, अतिरिक्त महर जैसी वैध शर्तों में, अगर हम थोड़ा फैला दें तो बात अधिक स्पष्ट हो सकती है। कुछ शर्तें ऐसी हैं जिनको निकाह के समय भी लगाया जा सकता है। निकाह के बाद कुछ समय बीत जाये तो इसकी वैधता समाप्त हो जायेगी। लेकिन अगर औरत अपने अधिकारों की रक्षा के लिए कुछ ज़मानत चाहती है, और अगर वह वैध है तो उसको उसके वैध अधिकार से किसी को वंचित करने का क्या अधिकार हो सकता है? मैं इसके तीन उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ। औरत यह शर्त लगाती है कि निकाह के बाद वह संयुक्त परिवार में नहीं रहेगी। संयुक्त परिवार में औरतों पर जो अत्याचार होते हैं वह इस्लामी शरीअत के लिए शर्मनाक है। मुस्लिम समाज की यह दशा है कि अगर कोई शिक्षित महिला निकाह के बाद पति जहाँ उचित आवास उपलब्ध करायेगा वहाँ रहेगी चाहे उसको तंगी में रहना पड़े परन्तु वह पति के साथ ही रहना पसन्द करेगी। बच्चों के पालन पोषण और दूसरी समस्याओं में शरीअत यही चाहती है। कभी ऐसा होता है कि पति पत्नी के अधिकारों पर ध्यान न देते हुए दूसरी चीजों पर रकम खर्च करता है। तो यदि वैध शर्तों के बढ़ाने से मुस्लिम समाज की रक्षा होती है तो कोई बात नहीं और मौलाना अतीक साहब ने जो बात कही वह बहुत महत्वपूर्ण है, हमारा समाज इस समय बिखरा हुआ है और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आज से पचास साल पहले बहुत सी बन्दिशें थीं वह टूट रही हैं। इनके टूटने के फलस्वरूप हमें रक्षा के लिए कुछ प्रावधान उपलब्ध कराना होगा। अगर इन शर्तों के बढ़ाने से यह चीज पैदा होती है तो इन चीजों का निकाह-नामा में या और कही उल्लेख आवश्यक नहीं है। केवल बात यह है कि औरत यदि चाहती है कि कुछ शर्तें बढ़ा दी जायें और यह कि यह चीज वैध है तो उसको इस अधिकार से वंचित

करने का कोई अधिकार नहीं है। कानून और नैतिकता के क्षेत्र अलग अलग हैं, उनको आपस में मिलाना नहीं चाहिए।

मौलाना रियासत अली साहब

निकाह की शर्तों की समस्या पर चर्चा चल रही है। तीसरी शर्त के बारे में क़ाज़ी साहब की राय पहले से है, कि इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, मेरी राय में इसे थोड़ा स्पष्ट होना चाहिए, इस लिए कि हम लोग भी शरीअत विभाग चलाते हैं, दारुल क़ज़ा चलाते हैं। मेरी मालूमात के अनुसार उत्तर प्रदेश में सब से पुराना शरीअत विभाग हापुड़ में है और राजस्थान के मुक़दमे, विशेष रूप से हापुड़ में ही आते हैं और मेरी जानकारी के अनुसार राजस्थान में दारुल क़ज़ा नहीं है, राजस्थान के कुछ परिवारों में यह परम्परा है कि पूरे खानदान के बच्चों के निकाह एक साथ हो जाते हैं अगर किसी परिवार में 50 लड़कियां हैं तो इन तमाम बालिग़ व नाबालिग़ लड़कियों का निकाह एक साथ हो जाता है। निकाह चूँकी माता-पिता करते हैं तो निकाह तो अनिवार्यत: हो गया, लेकिन जब बालिग़ होते हैं तो दोनों एक दूसरे के साथ रहने के लिए तैयार नहीं। लड़की या लड़के में से किसी को कोई ऐसी बात मालूम हो जाती है तो वह जाने के लिए तैयार नहीं होते। तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ शर्तों का होना अनिवार्य है। अगर लड़की को कोई शिकायत नहीं मिली या लड़की गई ही नहीं तो ऐसी स्थिति में क़ाज़ी क्या निर्धारण करेगा? तो शर्त तो होनी चाहिए, लेकिन शर्तों का विवरण अनिवार्य है।

मौलाना ज़ुबैर अहमद क़ासमी

'तलाक़ का अधिकार' सौंपने' का मैं सर्मथन करता हूँ

मौलाना अनीसुर्रहमान क़ासमी

मेरी राय में क़ाज़ी साहब ने सैद्धान्तिक रूप से जो तीन प्रस्ताव प्रस्तुत किया है वह ठीक है। शरीअत के अनुसार इसमें कोई कमी नहीं है। दलीलों के अनुसार भी ठीक है।

मुफ़्ती ज़फ़ीरूद्दीन

तीन ही पर सीमित हो, प्रस्ताव अधिक न हों, अन्यथा इसमें आपत्तिहै, इससे आगे में समर्थन नहीं करता।

मौलाना अब्दुल्लाह तारिक़ साहब

इस सिलसिले में मेरी राय यह है कि इसमें दो चीजें बढ़ा दी जायें, एक यह कि जो औरत या उसके अभिभावक महसूस करें, दूसरी यह कि निकाह के समय नहीं बल्कि रिश्ता तय होते समय शर्तें तय कर ली जायें।

मुफ़्ती अब्दुर्रहमान साहब

मेरी राय भी यही है। जो प्रस्ताव तैयार किये गये हैं उसमें उद्देश्य देखना, लड़की और लड़के के घर वालों का काम है इसलिए यह प्रतिबन्ध होना चाहिए और निकाह करते समय यदि वह उचित समझते हैं तो निकाह के समय तलाक़ का अधिकार सौंप सकते हैं।

मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी (आज़मगढ़)

इस लिए हम जब इस समस्या पर चर्चा करें तो हम को तमलीक (स्वामी बनाना) और तौकील (वकील बनाना) का अन्तर सामने रखकर ऐसी उपाय करनी पड़ेगी कि जिसमें हम औरत को प्राप्त होने वाले अधिकारों में थोड़ा शर्त रखना चाहें जिसमें क़ाज़ी या इमाम जैसा उचित समझें, तो वहाँ पर यह कहना होगा कि अगर क़ाज़ी यह महसूस करे कि मैंने इसके अधिकार में कमी की है और वह अनुमति दे दे तो पत्नी को यह अधिकार होगा कि वह तलाक लागू कर ले। ऐसे तरीक़े निकाले जा सकते हैं जिन की गुंजाइश फ़ुक्हा के यहाँ मौजूद है। मेरा कहना यह है कि स्वयं हनफ़ी फ़िक्ह में जो बहस आई है और उस बहस का साधारणत: हवाला दिया जा रहा है, अर्थात महर को बढ़ाना, घटाना। और स्पष्ट रहे कि निकाह के बाद भी मर्द को महर में इज़ाफ़ा करने का अधिकार है। और दूसरी तरफ से औरत को महर में कमी करने का अधिकार है। आज भी

बहस चल रही है कि क्या अदालत को यह अधिकार है या नहीं कि वह महर को बढ़ा दे। यह स्पष्ट है कि इसमें एक बड़ी आज़माइश का संकेत मिलता है। इस लिए हिदाया के लेखक ने जिस विस्तार के साथ इस समस्या पर लिखा है और मैं समझता हूँ कि वहाँ इमाम आज़म अबू हनीफा और साहबैन के कथन को स्वीकार और अस्वीकार करने की चर्चा कुछ अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, केवल इतना अन्तर है कि दोनों ही इस तरीके को वैध मानते हैं। इमाम अबू हनीफ़ा कहते हैं- जो महर पहले निर्धारित हुआ वह पहले है और जो दूसरी बार निर्धारित हुआ वह अनिवार्य नहीं बल्कि महर मिस्ल लागू होगा। और आज कल स्वयं यह समस्या बना हुआ है कि महर मिस्ल क्या है? इतना अन्तर हो चुका है कि महर मिस्ल निर्धारित करना एक कठिन समस्या बन गई है। दोनों ने जैसी शर्तें लगाई हैं वही माना जायेगा। और उसका कोई बड़ा फर्क समस्या पर नहीं पड़ेगा। आप इमाम साहब के मत को अपनाइये, कोई फर्क नहीं। अतिरिक्त महर का उल्लेख पहले कर दिया जायेगा, और कम महर को बाद में उल्लेख कर दिया जाये तो इमाम अबू हनीफा और साहबैन दोनों मिलकर यह कहेंगे कि अतिरिक्त महर का भुगतान करो, बल्कि उसमें एक और अच्छी बात हो जाएगी कि औरत की तरफ से जैसे एहसान हो गया कि तुमने निकाह दूसरे जगह नहीं किया, इसलिए मैं महर 20 हजार के बजाए 10 हजार स्वीकार करती हूँ। इस समस्या का समाधान फुक्हा निकाल सकते हैं। मुझे कहना यह है कि आज अपनी बहस आपके समाज की वास्तविक दशा को सामने रखकर और इस सन्देह को भी सामने रखकर अगर पूरे तौर पर यह अधिकार दे दिया जाए तो शरीअत का उद्देश्य कहीं नष्ट न हो जाये, ऐसा रास्ता निकालने का प्रयत्न करें कि इस समय जो समस्या सामने है उसके समाधान में सहायता मिल सके। मैंने इसमें हस्तक्षेप को अनिवार्य समझा कि चर्चा की दिशा बहुत विस्तार की तरफ विशेष रूप से तलाक का अधिकार सौंपने की तरफ जा रही थी।

मौलाना जमील अहमद नज़ीरी

बात बहुत हो गई मुझे कुछ नहीं कहना है, इसी विषय पर बोलना था।

मगर अब कोई आवश्यक्ता नहीं, जाने दीजिए।

मौलाना मुफ़्ती जुनैद आलम साहब

यहाँ पर दो समस्यायें चर्चा में हैं, पहली समस्या यह है कि अगर तलाक दी तो महर 20 हजार और नहीं दी तो महर 10 हजार। दूसरी समस्या दूसरे निकाह का है, दोनों समस्याओं में मुझे अन्तर दिखाई दे रहा है। पहली समस्या में मेरे विचार में साहबैन के कथन के अनुसार अमल करना उचित है और दूसरी में उचित नहीं है बल्कि इमाम साहब की राय को अपनाना चाहिए। इस का कारण यह है कि शरीअत में महर को शरीअत के अनुकूल कहा गया है, और महर निर्धारित किया है, इस का उद्देश्य भी तलाक के दुरूपयोग को रोकना है। कासानी ने इसको स्पष्ट किया है, 'महर लागू करने का उद्देश्य यही है कि मामूली सी बात पर पति तलाक न दे। तो अगर इस प्रकार की शर्त लगाये जिससे वह तलाक के दुरूपयोग से रुक सके तो मैं इसे उचित मानता हूँ और आवश्यकतानुसार, और स्थिति को देखते हुए साहबैन ने इसकी व्यवस्था दी है। दूसरे निकाह की स्थिति में इसकी आवश्यकता नहीं है इसलिए कि महर का उद्देश्य दूसरे निकाह से रोकना नहीं है। इसलिए स्पष्टीकरण नहीं मिलता है कि महर का उद्देश्य दूसरे निकाह से रोकना है। और फिर यहाँ पर आवश्यकता भी नहीं है। हिन्दुस्तानी समाज में दूसरा निकाह अच्छा नहीं माना जाता और यदि इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगाया जायेगा तो और बुरा समझा जायेगा, इस आधार पर दोनों समस्याओं में मैं अन्तर मानता हूँ।

मौलाना याकूब इस्माईल मुंशी

उलमा हज़रात! यह तफ्वीज़-ए-तलाक़ की समस्या के बारे में जो बहसें हुई हैं, ब्रिटेन में मैं तीस वर्ष से निवास कर रहा हूँ। वहाँ पिछले कुछ वर्षों से परिवारिक समस्याओं के समाधान के सिलसिले में एक शरई कौंसिल की स्थापना का दायित्व मेरे ऊपर है। हमारे यहां कुछ ऐसी पेचीदा समस्यायें हैं इनके बारे में हम क़ाज़ी साहब (मुजाहिदुल इस्लाम कासमी) से विचार विमर्श करते रहते हैं। चूंकि समस्या इससे सम्बन्धित थी मैं यह अनिवार्य समझ रहा हूँ कि

इस सम्बन्ध में हमारे यहां जो दशा है, उसको भी प्रस्तुत कर दिया जाये, तलाक़ का अधिकार सौंपना, जैसा कि मेरा विचार है यह अनिवार्यता श्रेणी में नहीं है बल्कि मात्र वैधता श्रेणी में है। अगर इसको अवैध कर दिया जाए तो इसके कारण बहुत सी समस्याओं के खड़े होने का खतरा है, हमारे यहां जो परिस्थितियां हैं वह यह कि हिन्दुस्तान पाकिस्तान और बंगला देश का जो वर्ग ब्रिटेन में रहता है वह अपने बच्चों के विवाह अपने सगे सम्बन्धियों में ही करना चाहते हैं, बच्चे बच्चियां भी साथ जाते हैं, प्रसन्न होते हैं, तैयार होते हैं, शादी समारोह होता है, शादी हो गई अब उसका ब्रिटेन में प्रवेश होना कठिन है इसलिए इसमें वीजा सबसे बड़ी समस्या है जैसा कि हमारे दोस्त का कहना है। जन्नत में जाना आसान है ब्रिटेन में प्रवेश पाना कठिन है। तो इस सिलसिले में परेशानी यह होती है कि लड़की वाले आमतौर पर लड़के के सिलसिले में अधिक यह होता है कि लड़के वाले आकर वीज़ा के लिए प्रयास करते हैं, बस एक बार सरकारी कानून के अनुसार लड़कों के सवाल-जवाब में लड़का कोई ऐसी गलत बात कह जाता है जिससे वह साक्षात्कार में असफल हो जाता है और वीजा देने से इन्कार कर देते हैं। अब इसके बाद अपील करने का अधिकार है लड़की को, अब यह भी कानून बनने जा रहा है, अप्रैल ही में शायद, यदि यह कानून बन गया तो अपील का अधिकार भी समाप्त हो जायेगा। अब लड़की वाले फिर अपील करते हैं, इसमें काफी खर्च आता है, लगभग कम से कम दो ढ़ाई हजार पौण्ड इसमें खर्च होता है, इसके बाद भी कभी कभी इसमें इन्कार हो जाता है। चूंकि वह लड़के से कुछ प्रश्न इस तरह के करते हैं, इसके कारण अब जब यह बातें हो जाती हैं तो लड़की वाले यूँ कहते हैं कि भई अब तो यह मामला कठिन है, आप तलाक दे दें, तो लड़के वाले कहते हैं कि हम तलाक नहीं देंगे, ऐसी भी घटनाएं हुई हैं कि लड़की को वहाँ भेज देते हैं, पाकिस्तान में आप रहो साथ में, वीजा आ जाये तब तक वहाँ रहो। लड़के ने कहा मकसद तो वहाँ आना था, क्यों बुलाऊँ उसको यहाँ, और उसके लिए क्यों खर्च वहन करूँ, जब तलाक की बात आई तो उसकी घटनाएं और तथ्य हैं कि बड़ी रकम मांगने के बावजूद उसके लिए तैयार नहीं होते, अगर इस तरह का निकाह नामा तय

किया जाए तो हम लोगों के यहाँ लड़कियों को छुटकारा मिल सकता है। अन्यथा दो-तीन वर्ष तक छुटकारा नहीं मिल पाता, मेरा विचार है कि इसको निकाह नामा में रखना चाहिए।

मौलाना अतीक़ अहमद क़ासमी

निकाह में शर्त लगाने की जो चर्चा चल रही है उसकी पृष्ठभूमि आप लोगों को मालूम है। मर्दों की तरफ से औरतों के अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत सी कोताहियां होती हैं। तलाक का अनुपात जो मीडिया प्रस्तुत कर रहा है और अत्याचार की जो बात कही जा रही है मुस्लिम औरतों पर जो अत्याचार हो रहे हैं उसको बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत किया जा रहा है। उन्होंने अपनी कमियों को छिपाने के लिए हमारे ऊपर निशाना साधा है लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि बिना कारण तलाक की घटनाएं, एक ही बैठक में तीन तलाक हो रहे हैं, और इनका अनुपात बढ़ रहा है और इसके साथ साथ बहुत सी कठिनाइयां सामने आ रही हैं। मैं लखनऊ में रहता हूँ, दारुल क़ज़ा से मेरा सम्बन्ध है वहाँ जो मुकदमे आते हैं उनमें अधिकतर ऐसे मुकदमे होते हैं कि निकाह हो गया और पति सऊदी अरब, कुवैत चले गये, अब वह खबर नहीं ले रहे हैं कठिनाई क्या है, मुकदमा दारूल कजा में आता है। अब यह समस्या सामने आती है, कि बचाव पक्ष ग़ायब है उस तक नोटिस कैसे पहुँचाया जाये। यदि नोटिस पहुँच गई तो हाजिर नहीं हुआ। तो अनुपस्थित पक्ष के विरुद्ध हम कैसे फैसला करें। इसके कारण अधिकतर औरतें अपने अधिकार से वंचित रहती हैं। इनके मुकदमें हम या तो लेते नहीं हैं या इस फैसले में बहुत समय लगता है। ऐसी स्थिति कोई मात्र एक नहीं है। विदेश जाने की बात अधिक हो रही है और कमाने की धुन में पति को वापस आने का अवसर नहीं और इस समस्या को जो समाधान था कि दारूल कजा की व्यवस्था को हम सक्रिय बनायें, मुझे दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि हम इसमें कोताही कर रहे हैं, और बहुत धीमी गति से आगे बढ़ रहे हैं। बिहार और उड़ीसा की बात मैं नहीं करता, यू. पी. में भी बहुत कम जिलों मे दारुल क़ज़ा है। मुकदमा अगर हमारे पास आ भी जाए तो बहुत सी चीजें ऐसी हो जाती हैं कि

हम मुकदमा लेने की स्थिति में नहीं होते। ऐसी समस्या में तो बहुत हैं लेकिन प्रश्न यह है कि समस्याओं का समाधान क्या है? केवल यही कि हम समझा दें? कुछ उपदेश दे दें। यह समस्या का समाधान नहीं है। अगर शरीअत अवसर देती है तो इस प्रकार के शर्त लगाए हुए निकाह नामें जिनमें शरीअत के उद्देश्य और निकाह तलाक के मामले प्रभावित न हों और किसी सीमा तक महिला के अधिकारों की रक्षा हो सके। तो ऐसे निकाह नामे हमें तैयार करना चाहिए और आगे बढ़ाना चाहिए, और दारुल क़ज़ा की स्थापना का कार्य पूरे देश में फैलना चाहिए। हर जगर सक्रिय दारुल क़ज़ा की स्थापना हो मेरी राय यही है। अगर फुक्हा की व्याख्याओं के अनुसार और कुरआन व सुन्नत के आदेशानुसार हो और यदि पति पत्नी चाहते हैं और शर्त लगा हुआ निकाह नामा स्वीकार करते हैं तो 'हम यह स्पष्ट है कि' दबाव नहीं डाल सकते, अगर एक पति शर्त के साथ निकाह नहीं करना चाहता है तो उसे मजबूर नहीं किया जा सकता। लेकिन अधिकतर निकाह में ऐसी आवश्यकता पड़ती है, और इसकी व्यवस्था तो शरीअत में रखी गई है तो हम उससे क्यों न लाभ उठायें।

मौलाना सऊद आलम क़ासमी

जिस समस्या पर चर्चा चल रही है वह बहुत संवेदनशील भी है और आवश्यक भी है। आप सज्जनों से अनुरोध है कि इस पर खुल कर बात करें और मैं काजी शरीअत और बोर्ड के माननीय सचिव से भी अनुरोध करूँगा कि इस पर विस्तार से बात होनी चाहिए। जो गंम्भीर दशा इस समय भारतीय समाज में आ रही है, आने वाले समय में इसका सामना नहीं किया जा सकता है। सरकार की तरफ से भी और जनता की तरफ से भी प्रतिक्रिया हो रही है, इसलिए यह आवश्यक है कि समस्या से उबरने के लिए इस पर विचार करें, और विचार करने के दो पहलू हैं। एक बात तो यह है कि कुरआन में जो मर्द को कव्वाम बनाया गया है वह केवल एक पक्षीय नहीं है। अगर आप के कुछ अधिकार औरतों पर है तो औरतों के कुछ अधिकार मर्दों पर हैं। यह जो निकाह है वह सामाजिक समझौता (Social Contract) है यह विक्रय (Sale) नहीं

हैं। एक समझौता जो आप करते हैं उसे एक व्यार्क्त तोड़ता हैं और एक शोषण करता है। और आपके यहाँ परिवार व्यवस्था हैं एक व्यक्ति अपने आपको कव्वाम (बड़ा) बनाकर समझौते को तोड़ देता है। उसको अल्लाह और रसूल ने जो आदेश दिये हैं उनका उल्लंघन करता है। अनिवार्य यह है कि एक वर्ग को शोषण और अत्याचार से बचाने के लिए कुछ अतिरिक्त कानून बनाये जायें तो उन्हें बनाना चाहिये ताकि शरीअत की न्याय व्यवस्था चलती रहे। दशा यह है कि जो लोग दारूल कजा से सम्बन्धित हैं उनके सामने वह समस्यायें भी जो अभी प्रस्तुत की गई हैं वह आती रहती हैं। सबसे बड़ी समस्या इस समय यह है कि एक व्यक्ति ने निकाह किया वह बीवी को रखता भी नहीं है ओर तलाक भी नहीं देता। वह इसके लिए किसी दारूल कजा में जायेगी। दारूल कजा खुलअ करायेगी और महर क्षमा कर देगी। और उसे महर नहीं देना पड़ेगा। उस समय स्थिति और गम्भीर हो जायेगी। पत्नी को जो अधिकार मिलना था उससे भी वंचित कर देता है। हमारी अदालत तो खुशी के साथ खुलअ करा देती है औरत तो मजबूर है उसको जान छुड़ाना है लेकिन उसके पैसे भी जा रहे हैं। यह स्पष्ट है कि भारत के समाज में औरत जो विधवा हो गई और तलाक हो गया तो उससे कौन निकाह करेगा। यह सामाजिक समस्या है आप इस पर विचार करें। एक औरत का पूरा जीवन नष्ट करने से बेहतर है कि नष्ट करने वाले को ऐसे कानून में बाँध दिया जाये कि वह ऐसा साहस न कर सके। इस के तीन पहलू और हैं, एक तो यह पहलू है कि आपका न्यायालय और आपका पर्सनल लॉ बोर्ड इसे लागू करे, दूसरा पहलू यह है कि यह एक बड़ी संवेदनशील समस्या है कि आप कुछ अधिकार भारत सरकार को दें।

शायद इस तरह का अधिकार सरकार को देने के लिए हम मुसलमान तैयार नहीं हैं वर्तमान स्थिति में उदाहरण के लिए आप यह कहते हैं कि तीन तलाक एक साथ यदि दी जायें तो वह लागू हो जायेंगी परन्तु तरीका गलत हैं और हजरत उमर ने कोड़े लगवाये, हम यह कहते हैं कि यह कोड़े सरकार के हाथ में दे दिये जायें, जो तीन तलाक एक साथ देता है तो उसकी ऐसी धुनाई करें कि बाद वालों को सबक मिले। अगर आप यह नहीं करेंगे तो यह सिलसिला

जारी रहेगा, तीसरी चीज़ यह है कि इस सिलेसिले में आप निकाह के समय कुछ शर्तें लगाएं चाहे शर्तों का सम्बन्ध इससे हो कि तुम दूसरा निकाह करोगे तो मेरा महर इतना होगा, इसके अरिक्त भी शरीअत के अनुसार जो हमारे जमाने वैध हैं, कुछ शर्तें और भी लगाई जायें। जहाँ तक मेरा अल्प अध्ययन है और यहाँ इतिहास के अगर कुछ शिक्षक बैठें हो तो वह समर्थक करेंगे कि मध्य काल में भारत में निकाह में ऐसी शर्तें लगाई जाती थीं? और स्वयं यह स्पष्ट है कि यहाँ हनफी फिक्ह का चलन अधिक है, निकट भूतकाल में जो निकाह नामे छपते थे उनमें यह भी होता था और तलाक का अधिकार सौंपने का प्रावधान भी था तो हम क्यों न इस पहलू पर विचार करें कि आने वाले दिनों में जो दशा होने वाली है उसमें इस्लाम की न्याय व्यवस्था को, पर्सनल लॉ को बचाने के लिए हम इन शर्तों पर ध्यान दें। हमारे पर्सनल जॉ बोर्ड को इन्हें कार्य रूप में लागू करने के अधिकार प्राप्त नहीं हैं, आप इसकी सिफारिश कर सकते हैं। आपके समाज में जो खराबियाँ रही हैं चाहे वह हिन्दुओं के कारण या आपके अपने स्वार्थ के कारण आ रही हैं। यह बात सर्वसम्मत है कि शोषण सभी सीमाएं पार कर चुका है।

मैं अनुरोध करता हूँ कि आप इस पहलू पर विचार करें कि निकाह नामे में ऐसी शर्तें लगाई जायें और वह अतिरिक्त शर्तें हों और आज की व्यवस्था के अनुसार अपील करें या आपकी हर जगह ऐसी अदालतें स्थापित हो जायें। आपके पास सिफ़ारिश है और सरकार के पास लागू करने की शक्ति है। तो ऐसी सूरत अवश्य होनी चाहिए कि इन तीनों पहलुओं से (निपट सकें) और यदि ऐसा नहीं तो आप देखेंगे कि दस वर्ष बाद अपनी व्यवस्था को बचाने में असफल रहेंगे।

मौलाना शाहीन जमाली

तलाक़ का अधिकार सौंपने की समस्या तलाक दे दो का नहीं है बल्कि ले लो का है। उर्दू में यदि इसको इस अन्तर के साथ देखेंगे कि शरीअत ने औरत को जो अधिकार दिया है वह तलाक ले लो का है दे दो का नहीं है। जहाँ तक निकाह नामें में शर्त कर सम्बन्ध है, मेरा विचार यह है कि यदि इस

सिलसिले में यह प्रस्ताव हो जाये कि निकाह नामे में एक पंक्ति लिखी जाये कि ''अगर मेरी तरफ से अनिवार्य अधिकार की अदायगी में कोताही हो जिसके कारण पत्नी मुझसे अलगाव आवश्यक समझती हो तो अमुक अमुक पांच आलिमों से बात करे और वह आवश्यकता समझें तो मुझ से तलाक दिलवा दें और में राजी नहीं हूँ तो उनको मेरी तरफ से तलाक देने का अधिकार होगा। अगर इस तरह की कोई पंक्ति निकाह नामा में लिखवा ली जायें और दोनों पक्ष उस पर सहमत हों तो मेरे विचार में यह अधिकार उलमा के हाथ में होगा और तलाक दिलवा देना पति के लिए और पत्नी के लिए उचित वातावरण में संभव होगा और इस समझौते में यह भी लिख दिया जाये कि मर्द की तरफ से वापसी का मुझे अधिकार नहीं होगा।

मुफ़्ती नसीम अहमद क़ासमी

अगर औरत को पूर्ण रूप से तलाक़ का अधिकार सौंप दिया जाये तो वह उसका दुरूपयोग करेगी। जहाँ तक शर्तों के लागू होने का प्रश्न है वह भी एक समस्या बन जायेगी कि शर्तें लागू हुईं या नहीं। औरत चूँकि छुटकारा चाहेगी और यह कहेगी कि पति ने अमुक अमुक शर्तों का पालन नहीं किया है इस लिए मैं तलाक देने के लिए अधिकृत हूँ। इस लिए इस सिलसिले में दारूल क़ज़ा के पैसले को या कम से कम प्रमाणित उलमा की राय को अपनाना चाहिए। महर के सिलसिले में जो बात कही जा रही है वह फिक्ह की तमाम किताबों में विशेष रूप से हनफी फिक्ह और दूसरी फिक्ह की किताबों में बहुत विस्तार से लिखा गया है कि, दो तरह का महर निर्धारित किया जा सकता है अगर पति ने दूसरा निकाह किया तो यह महर, और नहीं किया तो वह महर, इसकी दशायें विभिन्न हैं इस सिलसिले में जो भारत की विशेष परिस्थितियाँ हैं, महर की वद्धि हमारे समाज में समस्या का समाधान नहीं है। विशेष रूप से इस समय हमारे समाज में, जो दहेज, तिलक और सलामी की लानत है मर्द उससे अवैध लाभ उठायेगा और वह सलामी यातिलक लेने के लिए बार बार दूसरी या तीसरी शादी कर सकता है। हैदराबाद में एक टैक्सी ड्राइवर के साथ जा रहा था, मैंने उससे बात की, मैंने उससे यह कहा कि भाई तुम लोग छोटी बच्चियों की शादी अरब

शेख से क्यों कर देते हो? उस ने जो बात कही वह उलमा हजरात के लिए ध्यान देने योग्य है। उसने यह उत्तर दिया कि मौलाना! होता यह है कि हम अपनी बच्ची का निकाह यहाँ किसी व्यक्ति से करते हैं उस निकाह में लाख दा लाख रूपये कम से कम मध्यम वर्ग में खर्च आता है। शादी करने के बाद मेरी बेटी चली जाती है और अपने ससुराल महीना दो महीना वहाँ वच चैन सुकून से व्यतीत करती है उसके बाद पति पत्नी के सम्बन्ध में कड़वापन आ जाता है। पति यह करता है कि दहेज के सामान को धीरे धीरे बेचना प्रारम्भ कर देता है, और सब सामान समाप्त हो जाता है, और मेरी बेटी को तलाक दे देता है, और मेरी बेटी मेरे घर आ जाती है। तो दो लाख रूपये तो मैं पहले खर्च कर चुका हूँ और बाद में बच्ची का रिश्ता करना बहुत कठिन हो जाता है, तो जब हम अरब शेख से शादी करते हैं, तो सलामी देने की नौबत नहीं आती है बल्कि शेख की तरफ से जो महर अदा की जाती है उससे हमारा गुजर बसर हो जाता है। तो इस सिलसिले में विशेष रूप से समाज में तलाक का दुरूपयोग रोकने के लिए और अशिक्षा को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। अन्तिम समस्या जो निकाह में शर्त लगाने की है इस समय का महत्वपूर्ण विषय है। मेरा अपना व्यक्तिगत विचार यह है कि चारों इमामों की फिक्ह में सबसे अधिक विस्तार और व्याख्या फिक्ह हम्बली में है। इमाम अबू हनीफा, इमाम शाफई के यहाँ जो शर्तें स्वयं निकाह के माध्यम से निकाह में लागू होती है इन शर्तों को देखते हुए यह समस्या का समाधान नहीं है। विशेष रूप से जिन कठिनाइयों से इस समय हमारा समाज जूझ रहा है, अगर हम उन समस्याओं का समाधान चाहते हैं तो हमें हम्बली फिक्ह से फायदा उठाना चाहिए और मैं समझता हूँ कि इसमें कोईक हानि नहीं है। वह शर्तें अगर निकाह के उद्देश्य के प्रतिकूल हैं लेकिन शरीअत ने ऐसी शर्त को लगाने को हराम भी नहीं ठहराया है। और इन शर्तों को लगाने में औरत को लाभ है। तो ऐसी शर्तें लगाई जा सकती हैं और ऐसी शर्तें यदि लगाई जायें तो दोनों पक्षों को उनका पूरा करना अनिवार्य होगा। यह मेरा अपना व्यक्तिगत विचार है।

डा0 तौक़ीर आलम फ़लाही

निकाह में शर्त के सम्बन्ध में मुझे एक बात कहनी है कि जब तलाक

सबसे बुरा वैध कार्य है, और यह तलाक कोई ऐसा कार्य नहीं जिसे कभी नहीं करना चाहिए। तलाक बिल्कुल मजबूरी की दशा में होता है जब दम्पति के बीच सम्बन्ध बिगड़ जायें यह स्पष्ट है कि तलाक के माध्यम से एक जोड़ा अलग हो जाता है तो इन दोनों को दूसरा निकाह करने का अधिकार प्राप्त है और इस तरह कोई दबाव नहीं है। लेकिन एक व्यक्ति की आर्थिक दशा खराब है और निकाह के समय उस पर शर्त के अनुसार कोई रकम लागू कर दिया जाये तो यह अन्याय होगा। मेरे विचार में यह उचित नहीं है। मैं मौलाना शाहीन जमाली साहब के इस मत से सहमत हूँ कि निकाह के समय कोई ऐसी पंक्ति (इबारत) लिखी होना चाहिए कि कम से कम वह व्यक्ति लपेट में न आये। धन्यवाद।

मौलाना अनीसुर्रहमान साहब

निकाह में जो शर्तें स्वयं निकाह के लिए अनिवार्य होती हैं उनके अतिरिक्त दोनों पक्ष कुछ दूसरी शर्तों की बढ़ोत्तरी कर सकते हैं या नहीं? फुक्हा शर्त लगाना वैध करार देते हैं मगर मतभेद इसमें है कि कौन सी शर्तें सही हैं जिन पर अमल करना निवार्य है और कौन सी गलत हैं जिन पर अमल करना अनिवार्य नहीं है? यहाँ एक प्रश्न है कि क्या कोई महिला निकाह के समय नौकरी करने की शर्त लगा सकती है क्या दूसरा निकाह करने के समय अतिरिक्त महर की शर्त लगा सकती है? इसी प्रकार निकाह के समय तलाक के अधिकार की शर्त लगा सकती है या नहीं? फुक्हा ने जो व्याख्या की है उनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि शर्त लगाना बुराई है, इसी प्रकार दूसरे निकाह की स्थिति में महर बढ़ाने की शर्त साहबैन की दृष्टिकोण से सही है। ऐसा कहा जा सकता है कि इस प्रकार यदि कोई औरत निकाह में विशेष शब्दों के साथ निकाह की तरफ संकेत करते हुए तलाक के अधिकार को तफ्वीज के रूप में प्राप्त करती है तो यह उसका अधिकार है कि हनफी फुकहा के उल्लेख के साथ यह दशा वैध है।

मौलाना मुस्तफ़ा मिस्बाही

तलाक का अधिकार सौंपने के सिलसिले में यह बात आई कि तलाक का

अधिकार सौंपना अवैध है इस दशा में तलाक नहीं होगी। मुझे यह कहना है कि यह तो हदीस है कि यह उम्मत गुमराही पर सहमत नहीं होगी। उम्मत के हर वर्ग की इस पर सहमति है कि जो मामले कुरआन व सुन्नत में नहीं हैं उन पर शोध किया जायेगा। तलाक का अधिकार सौंपने के मामले में मेरा विचार है कि वह कुरआन व सुन्नत में है। मान लिया जाये कि वह कुरआन व सुन्नत में नहीं है, तो इस आधार पर अवैध कहना बिल्कुल ठीक नहीं है बल्कि यह कहना चाहिए कि यह इज्तेहाद (शोध) का मामला है। दिल्ली से प्रकाशित होने वाली एक पत्रिका तर्जुमान में मैंने पढ़ा था। इसमें यह बात कही गई थी कि तलाक का अधिकार सौंपना बिलकुल अवैध है और इसमें कई देशों का उदाहरण दिया गया था। मुझे यह कहना है जब यह राय गलत है तो दूसरे देशों का उदाहरण देखकर इस गलत उदाहरण का अनुकरण करने का आवाहन करना भी ठीक नहीं है। दूसरी बात जो कहना था, जो दुगुने महर की बात की गई है, इस सम्बन्ध में यह बात समझने की है कि, देश के एक भाग में तिलक का प्रचलन और दूसरा जहाँ तिलक का प्रचलन नहीं है वहाँ सीधे सीधे निकाह शरीअत के अनुसार होता है लेकिन वहां दूसरी बुराई है। मेरा विचार है कि दुगुना महर का प्रस्ताव गलत है।

मौलाना बद्र अहमद मुजीबी

मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

मौलाना शम्स पीरज़ादा साहब

जो समस्यायें इस समय पैदा हो रही हैं और हमारे समाज में औरतों के अधिकार के सिलसिले में जो उनके साथ अन्याय हो रहा है और वह जिन समस्याओं में घिरी हुई हैं उनका उचित समाधान ढूँढ़ा जाये। मामलों को यूँ ही न रहने दिया जाये। कोई योजना सोची जाये जो शरीअत के दायरे में हो और हम कोई ऐसा प्रस्ताव न करें जिससे कि शरीअत के आदेश प्रभावित हों। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ यह कि तलाक स्थानातरणीय नहीं है। और इसकी कोई दलील कुरआन व सुन्नत से नहीं है। तलाक जैसी चीज स्थानान्तरित नहीं हो

सकती। इसका आधार एक महान उद्देश्य पर होता है और इन उद्देश्यों को तलाक देने वाला ही ध्यान में रख सकता है, दूसरा नहीं रख सकता। तो इस दशा में जब तलाक का अधिकार सौंप दिया जाये, वकील बनाने की स्थिति में यह महान उद्देश्य नष्ट हो जायेगा। हमें केवल यही नहीं देखना चाहिए कि इसे विधि (कानून) का रूप कैसे दिया जा सकता है, बल्कि यह भी देखना चाहिए कि जो उद्देश्य शरीअत ने रखे हैं उसमें से कोई उद्देश्य नष्ट न हो जाये। दूसरी बात यह है कि अगर तलाक का अधिकार औरत को सौंपा जा सकता है तो औरत का खुलअ का भी अधिकार है। तो क्या कोई औरत यह कहती है कि मैं अपने पति को खुलअ का अधिकार दे देती हूँ। इस तरह वह जब चाहे खुलअ का उपयोग करे। और महर माफ होगा। तो खुलअ का अधिकार मर्दों को सौंपा जा सकता है। और यदि ऐसा किया जा सका है तो मर्द भी यह चाहेंगे कि ऐसी शर्तें निकाह नामा में लिख दी जाऐं ताकि उनको महर देना ही न पड़े। और वह खुलअ की घोषणा कर देगा। तो अगर तलाक स्थानान्तरणीय है और अगर अधिकार सौंपा जा सकता है तो खुलअ का अधिकार भी सौंपा जाना चाहिए। और जो शर्तें आप निकाह-नामें में लिखें वह मतभेद पैदा करने वाली न हो आगे चलकर यह बोतें पैदा हो सकती हैं और इन शर्तों पर अमल नहीं किया जा सकता। ऐसी तरीक़ा सोचना चाहिए जिसको स्वीकार करने के लिए समाज तैयार हो। मैं यह समझता हूँ कि जो समस्यायें पैदा हो रही हैं उनका समाधान दूसरे रूपों में ढूढ़ना चाहिए। उदाहरण के लिए जो तलाक अत्याचार के आधार पर दी जाती है उस पर कोई दण्डात्मक कारवाई होनी चाहिए। मनमाने ढ़ंग से तलाक देने की दशा में पति को हरजाना देना होगा और कितना देना होगा? यह अलग बात है कुछ इस प्रकार के दण्ड का प्रस्ताव किया जा सकता है। जब मनमाने तलाक को अवैध और अत्याचारपूर्ण कहा गया हो, जिससे पत्नी को हानि हो, हर तलाक पर नहीं। इस तरह की चीजें सोची जा सकती हैं लेकिन निकाह नामा के लिए शर्त नामा का प्रस्ताव अमल में लाने योग्य नहीं है।

मौलाना मुजाहिदुल-इस्लाम साहब

मैं समझता हूँ कि हम सब में इस बात पर सर्व सम्मति है कि समाज में

कठिनाइयाँ हैं उनका कोई हल निकालना चाहिए और अमली होना चाहिए और शरीअत के उद्देश्य के अनुकूल होना चाहिए। अब तक जो चर्चा हो चुकी है। उससे यह बात स्पष्ट है कि औरतों पर जो अत्याचार होते हैं उनसे बचाने के लिए कोई उपाय होना चाहिए, एक मौलिक परन्तु विवादित दृष्टिकोण है कि तलाक का अधिकार सौंपना वैध है या नहीं? अब जो पीरजादा साहब ने जो बात कही है कि तलाक का वकील बनाना भी वैध नहीं है, तो मैं समझता हूँ कि इस बात पर भी विचार करना होगा कि यह इज्तेहाद (शोध) योग्य है या नहीं? जो मामला खुलअ का बताया गया तो वह हम कराते रहते हैं खुलअ में जो एक परेशानी है वह यह है कि मैं अपना महर इस शर्त पर माफ करती हूँ कि पति मुझे तलाक दे दे। स्पष्ट है कि पति की सहमति पर भी निर्भर होगा। बहुत सावधानी से हम लोग दारूल क़ज़ा में मालिकी फिक्ह के अनुसार अमल करते हैं। जब देखते हैं कि दशा ऐसी है कि तलाक एक बुरी चीज है परन्तु आवश्यकता भी है। और शायद कि तलाक की अनुमति का ही नतीजा है कि मुस्लिम समाज में वह बिगाड़ नहीं है जो हिन्दू समाज में है। तो दोनों ही चीजें सामने रखते हुए हमारे मित्र जब कमेटी में बैठें तो उनको चाहिए कि उनका संतुलित समाधान निकालें। समाधान के दो उपाय हैं एक तो यह कि हम नियमित रूप में शर्तनामा तैयार करें। देखें कि वह शर्तनामा किस प्रकार हो सकता है और क्या हो सकता है वह शरीअत के उद्देश्यों के अनुकूल होऔर दूसरी चीज यह भी होगी कि हम लिखें कि यदि कोई व्यक्ति निकाह अमुक अमुक शर्तों पर करता है तो अमुक शर्त वैध होगी अमुक शर्त वैध नहीं होगी। यानी इसकी हैसियत आंशिक है।

☆☆☆

फ़ैसले

सेमीनार के प्रतिभागीयों के सर्व सम्मति से निर्धारित किये हुए फैसले

निकाह में शर्त

1. निकाह में यदि ऐसी शर्तें लगाई जायें जो निकाह के द्वारा अनिवार्य होने वाले दायित्व और अधिकार की पुष्टि करती हों तो वह वैध हैं और उनका पूरा करना अनिवार्य हैं।
2. निकाह के समय ऐसी शर्त लगाना जो निकाह के उद्देश्य के विपरीत हो या शरीअत ने उसे मना किया हो, वह वैध नहीं है, जैसे पति जीविका न देने की शर्त लगाये, या दहेज और तिलक की शर्त लगाना।
3. निकाह के समय ऐसी बातों की शर्त लगाई जाये कि शरीअत में न उनको अनिवार्य कहा गया है न उनसे मना किया है, तो ऐसी शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है।

एक अमली क़दम

'निकाह में शर्त' विषय पर बहस (चर्चा) के फलस्वरूप अकेडमी ने मुस्लिम समाज की दशा और समस्याओं, पूरे देश भर के शरई दारुल क़ज़ा में दायर और फैसले किये गये मामले, और सरकारी न्यायालय में प्रस्तुत मुसलमानों के मामलों के परिप्रेक्ष्य में एक विस्तृत निकाह नामा, प्रस्तावित करके तमाम मसलको (Schools of thought) के उलमा, और मुफ्ती, और कानून के माहिर लोगों को सोच विचार के लिए भेजा, जिसपर देश के विभिन्न भागों से 100 महत्वपूर्ण उलमा ने अपने विचार व्यक्त किये और निकाह नामा में दर्ज हुए

विभिन्न शर्तों के अलावा तफ़्वीज़-ए-तलाक़(तलाक़ का अधिकार सौंपने) के मामले में फिक्ह के सिद्धान्त के अनुसार अमूल्य विचार प्रस्तुत किये, जिसमें इस दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है क्योंकि वह कुरआन में परिवार की धारण और मामलों में न्याय विधि के अनुकूल है।

उलमा द्वारा दिये गये सारे उत्तरों को ध्यान ने रखते हुए अकेडमी में दूसरी बार इस समस्या से सम्बन्धित एक सम्पूर्ण और स्पष्ट लेख (तहरीर) और तैयार किया हुआ निकाह नामा उलमा की सेवा में प्रस्तुत किया जिसे आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। भारत की वर्तमान दशा में भी मुसलमानों में क्षेत्रीय सांस्कृतिक और सामाजिक वर्गों में अन्तर देखते हुए तैयार किए गये निकाह नामे के फलदायक और अधिक लाभदायक होने की आशा है।

(संस्था, इस्लामिक फिक्ह अकेडमी)

दाम्पत्य जीवन की कठिनाइयाँ और उनके समाधान का प्रयास

एक पत्नी की मौजूदगी में दूसरी औरत से निकाह करना शरीअत के अनुसार वैध है शर्त यह है कि दोनों पत्नियों के बीच अन्याय न हो अगर इस बात का सन्देह हो कि पति दो पत्नियों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर सकेगा तो एक ही पत्नी पर सन्तोष करे ''अगर तुम्हें डर है कि तुम न्याय नहीं कर सकीगे तो एक ही (सूरः निसा)'' कुरआन के अनुसार यह बिल्कुल वैध नहीं कि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को निलम्बन की दशा में रखे न वह पति वाली कही जा सके और न तलाक दी हुई और न विधवा। ''अपना पूरा झुकाव एक ही तरफ न कर दो कि दूसरी को निलम्बन की दशा में छोड़ दो'' (कुरआन)

आजकल साधारण रूप से जब पति पत्नी के बीच सम्बन्ध अच्छे होते हैं तो दूसरा निकाह नहीं किया जाता। बल्कि जब पहली से सम्बन्ध बिगड़ते हैं तो आम तौर पर उसको मैके मैं बैठा दिया जाता है या उस पर कोई दोष मढ़ दिया जाता है उसका खाना खर्चा बन्द कर दिया जाता है और पति कोई दूसरी औरत व्याह कर ले आता है। न तो पहली पत्नी को तलाक देता है और न उस का

अधिकार पूरा करता है। अधिकतर पहली पत्नी से पैदा बच्चों को भी उस पत्नी के देख रेख में छोड़ देता है न उनके खर्च अदा करने की सोचता है। जो लोग साधारणत: समाज की दशा पर नजर रखते हैं वह इस तरह प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं से अवगत होते हैं। शरीअत में दूसरे निकाह की जो अनुमति दी है उसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं कि उससे लाभ उठाकर अल्लाह की कमजोर रचना पर अत्याचार किया जाये।

कुछ संख्या उन लोगों की भी है जो दूसरे निकाह के बाद पहली पत्नी को खर्च तो देते हैं लेकिन पति के रूप में जो प्यार देना चाहिए और जैसे उनके साथ रहना चाहिए उससे बिल्कुल बचते हैं। इस प्रकार शरीअत की अनुमति का अवैध लाभ उठाया जाता है और लालसा के बन्दे अनुमति का लाभ उठाते हैं और न्याय करने से दूर भागते हैं। अर्थात अल्लाह के आदेश में से कुछ को मानते हैं ओर कुछ से इन्कार करते हैं। यह स्पष्ट है कि दशा के सुधार की आवश्यकता है।

दूसरी तरफ यह भी है कि दूसरे निकाह की अनुमति का आधार विवेक (समझदारी) पर है बहुत सी बुराइयों से रोकती है, और बहुत सी आर्थिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दशाएं ऐसी हैं जिनमें दूसरा निकाह अनिवार्य है। दूसरे निकाह के कुछ कारण तो स्पष्ट हैं और उसको साधारण लोग भी समझ सकते हैं। जैसे औरत का पूरी रतह पागल होना या किसी भयानक और लम्बी बीमारी (Cronic desease) का शिकार होना जिससे पत्नी का कर्त्तव्य निभाने के योग्य न रह जाना। लेकिन कुछ दशाएं ऐसी भी हो सकती हैं जिसको लोग न जानते हों परन्तु पति उसे जानता हो। कभी कभी सामाजिक और आर्थिक दशा भी कारण हो सकती है। कुछ क्षेत्रों में कुछ समय महले ऐसे बड़े किसान जिनकी सम्पत्ति और पैदावार संभालना कठिन कार्य होता था तो वह एक से अधिक निकाह करते और घर की व्यवस्था देखने के लिए उन्हें एक से अधिक पत्नी की आवश्यकता होती थी। कभी कभी आपात स्थिति मे मर्दों की संख्या कम होना भी इसका एक कारण होता है, कभी कभी मर्द अपनी काम वासना की तृप्ति के लिए एक से अधिक निकाह करके अपने को पाप से बचाता है।

भारत के मौजूदा समाज में कुछ अपवादों को छोड़कर यह बात निश्चित है कि दूसरे निकाह के बाद दोनों पत्नियों के साथ न्याय नहीं हो पाता है बल्कि अन्याय होता है।

उपरोक्त परिस्थिति का यदि सर्वेक्षण किया जाये तो दूसरे निकाह की अनुमति को निरस्त करना उस शरीअत के आदेश को छोड़ना है जो शरीअत के बनाने वाले की दृष्टि में वैध हो। दूसरी तरफ इसकी अनुमति से समाज में जो अन्याय होता है उसको मिटाना भी अनिवार्य है। हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ अली थानवी ने इस प्रकार की दाम्पत्य की उलझनों को दूर करने के लिए काबीन नामा का प्रस्ताव किया किया था, अब देश के जो हालात हैं उनको दो अलग-अलग दृष्टिकोण से देखना चाहिए, एक तो पाश्चात्य संस्कृति और नई विचार धाराओं के फलस्वरूप निकाह को एक ऐसा सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया जा रह है कि जिससे औरत हर तरह से स्वतन्त्र हो, यह नारी स्वतन्त्रता के नारों का प्रति फल है जिसने यूरोप में परिवार व्यवस्था को बिखेर दिया है और लैंगिक बेलगामी (Sexual permissiveness) के रास्ते पर पश्चिमी संस्कृति को डाल दिया है। हमारे यहाँ का वह वर्ग जो स्वयं को बुद्धिजीवी कहता है उसने जाने अनजाने बिना सोचे समझे इस सोच को अपना लिया है। इस लिए वह अधिकार और शरीअत की सीमाओं का उल्लंघन करना चाहता है जिनसे एक परिवार फल फूल सकता है, और जिसमें पति पत्नी की नैतिक भावनायें और उनके प्राकृतिक कर्त्तव्य को सामने रखते हुए शरीअत में दोनों के लिए कुछ सीमाएं निर्धारित की हैं और एक दूसरे के लिए कुछ सीमाओं को अनिवार्य कर दिया है। और फिर कानून के साथ साथ नैतिकता को भी विशेष महत्व दिया गया है, विशेष रूप से इस लिए कि दम्पति के सम्बन्ध भरोसे और आपसी वफादारी पर आधारित हैं। यह रिश्ता एक सीमा तक निजी है इस पर कानून के हस्तक्षेप की सम्भावना कम रहती है। इस लिए निकाह के खुत्बे (भषण) में जो आयतें पढ़ी जाती हैं उसमें चार बार तक्वा (अल्लाह का डर) अपनाने का उपदेश दिया गया है। ढके छिपे, अन्दर, बाहर अल्लाह को हर चीज का ज्ञान है।

लेकिन ऐसे लोगों पर ध्यान न दें तो इस वास्तविकता को मान कर चलना

पड़ेगा कि तक्वा न होने और कानून के दुरूपयोग से परिवारिक जीवन में उलझने खड़ी हो जाती हैं और कुटुम्ब बिखर जाता है। बच्चों की देख भाल नहीं हो पाती, समाज में अत्याचार और अन्याय फैल जाने के कारण अन्य प्रकार के बिगाड़ पैदा हो जाते हैं, संक्षेप में ऐसी समस्यायें निम्नलिखित हैं:

1. पहली पत्नी के होते हुए दूसरा निकाह कर लेना और पहली पत्नी को अधिकारों से वंचित रखना और दो पत्नियों के बीच सम्बन्ध में समानता न होना।
2. तलाक नफरत की चीज है लेकिन आवश्यकता पड़ने पर इसका प्रावधान रखा गया है, इसका प्रयोग बहुत सोच समझकर और सुधार के सारे प्रयास विफल होने के बाद होना चाहिए था। लेकिन मात्र सामयिक आवेग से प्रभावित होकर बिना सोचे समझे प्रयोग किया जाने लगा है।
3. भारतीय समाज में तलाक का ठीक तरीका प्रचलित नहीं रहा और एक बार में तीन तलाक दे दी जाती है, न यह देखा जाता है कि औरत मासिक धर्म से है या स्वच्छ है, सारे शरीअत के उपदेशों को भुलाकर तलाक दे दिया जाता है और यह तरीका बिल्कुल घृणित है, और बिगाड़ पैदा करता है।
4. तलाक के बाद बच्चे या तो माँ से छीन लिए जाते हैं या फिर बच्चों के पालन पोषण की परवाह नहीं की जाती है।
5. विभिन्न तरीकों से औरत को मजबूर किया जाता है कि वह महर माफ कर दे बल्कि कुछ और धन देकर पति से तलाक प्राप्त करे। उसके दहेज के सामान वापस नहीं किए जाते और उसे निरादर समझा जाता है और जो भेंट उपहार उसे मिले होते हैं उसे वापस ले लिया जाता है, और औरत ऐसे अन्याय का शिकार हो जाती है कि वह सब कुछ छोड़ कर अलगाव स्वीकार कर लेती है। यह स्पष्ट है कि शरीअत इस तरह के अन्याय को वैधता का प्रमाण नहीं दे सकती। ''सम्पत्ति के हस्तान्तरक के लिए दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है, और इसी सहमति पर सम्भव है कि कानूनी आदेश लगा दिया जाये लेकिन कोई माल पवित्र नहीं हो सकता अगर उसको दिल से सहमति न हो, जब तक वास्तविक सहमति के साथ औरत

अपने अधिकार को न छोड़े या पति को कुछ न दे तो माल पति के लिए हलाल और वैध नहीं। ''अह वह राजी खुशी तुम्हें कोई चीज दे दें। तो तुम उसे खुश होकर खाओ।'' कभी कभी पति इस तरह ला पता हो जाता है कि उसके मरने जीने की काई खबर नहीं होती। कभी पता तो रहता है कि वह जिन्दा है लेकिन पता नहीं चलता कि वह कहाँ है, क्या कर रहा है और परिवार को भूला रहता है।

6. कभी कभी पति अपनी बर्बरता का प्रयोग करते हुए पत्नी के अधिकार अदा नहीं करता है और न उसे तलाक देकर अलग करता है और अपने जीवन का कोई और नक्शा बनाकर और उस पर बदले की भावना से उसे अनिश्चित दशा में रखता है न उसे विधवा कहा जा सकता है और न पति वाली कहा जा सकता है।

यह और इस प्रकार की कई और सामाजिक समस्याएं हैं जिन्हें समाज की तीखी सच्चाइयाँ कहा जा सकता है। दारुल क़ज़ा की विस्तृत व्यवस्था इन समस्याओं को हल करने में बहुत सीमा तक सहायक हो सकती है। लेकिन भारत में यह व्यवस्था पूरे देश के स्तर पर स्थापित नहीं हुई है और जहाँ है भी वहाँ बहुत तरह की कठिनाइयां पैदा होती रहती हैं।

इन हालात में यदि निकाह में कुछ शर्तें लगाई जा सकें तो शर्त लगा हुआ निकाह नामा बहुत सारी पेचीदगियों को सुलझाने में सहायक हो सकता है। निकाह की शर्तें अगर निकाह के उद्देश्य के विपरीत हों तो मान्य नहीं होंगी लेकिन फिक्ह के दृष्टिकोण से निकाह के माध्यम से प्राप्त होने वाला अधिकार और उन अधिकारों को अदा न करने की स्थिति में जो अन्याय होते हैं उनको मिटाने के लिए जो शर्तें लगाई जायेंगी वह निकाह के उद्देश्य के विपरीत नहीं होंगी, यही कारण है कि फुक्हा ने कुछ ऐसी शर्तों की अनुमति दी है जिनमें पत्नी को हानि से बचाया जा सके।

हनफी फिक्ह में इस विषय को जिस तरह स्पष्ट किया गया है उसके अनुसार निर्धारित महर दो होना, और शर्तों को पूरा होने की दशा में कम महर, और शर्तों के उल्लंघन की दशा में वह निर्धारित महर जो महर मिस्ल से अधिक

हो का अनिवार्य होना, अन्तर केवल इतना है, कि साहबैन हर दो निर्धारित महर को दोनों दशाओं में अदा करना अनिवार्य करार देते हैं। इमाम आजम अबू हनीफा पहले उल्लेख किए गये महर को निर्धारित महर करार देते हैं, और दूसरी दशा में महर मिस्ल की अनिवार्यता के समर्थक हैं, यह सारी चीजें लेखों में आ चुकी हैं, यहाँ उल्लेख की आवश्यकता नहीं है, समस्या पर इस तरह सोचना है कि दूसरे निकाह की छूट शरीअत के न्याय को चोट पहुँचाती है और अधिकतर औरतें अन्याय का शिकार होती है, इसी तरह बिना कारण तलाक़ औरत को अनिश्चित दशा में छोड़ देना और अधिकार अदा न करना औरत के साथ अन्याय है, और समाज में इस तरह की बातों का सामना होना अब बिरल नहीं रहा।

इन हालात में और उपरोक्त विवरण को देखते हुए संलग्न निकाह नामे का अध्ययन किया जाये, इसको अन्तिम रूप दिया जाए यदि शरीअत के आदेश के अनुकूल हो जिसमें शरीअत के उद्देश्य को ध्यान में रख कर संभव सीमा तक कानून के दुरूपयोग से होने वाले प्रभाव से बचाव भी हो और समाज को सीधे रास्ते पर रखने का कारण भी बने।

☆☆☆

निकाह नामा

पति का नाम–

पिता/अभिभावक का नाम–

आयु–

पता–

वर्तमान व्यवसाय/पद–

पहला/दूसरा निकाह–

दुल्हन का नाम–

पिता का नाम–

आयु–

पता–

पहला/दूसरा निकाह–

दूसरे निकाह की स्थिति में, क्या निकाह पति की मृत्यु या तलाक के बाद किया जा रहा है–

वर्तमान व्यवसाय/पद–

निकाह के वकील का नाम (पति की तरफ से)–

पिता का नाम–

आयु–

पता–

व्यवसाय–

दुल्हन के अनुमति के गवाह

(1)	(2)
नाम	नाम
पिता का नाम	पिता का नाम

आयु	आयु
पता	पता

निकाह के गवाह

(1)	(2)
नाम	नाम
पिता का नाम	पिता का नाम
आयु	आयु
पता	पता
व्यवसाय	व्यवसाय

महर ……. यदि पति ने उक्त पत्नी की मौजूदगी में दारूल क़ज़ा …… की राय के बिना दूसरा निकाह किया या उक्त पत्नी को तलाक़ दी।

ऐसी स्थिति में महर की……केवल होगी।

☆☆☆

इक़रार/शर्त नामा

(1) पति और पत्नी दोनों मुसलमान हैं और इस्लामी शरीअत के पाबन्द रहने का इकरार करते हैं।

(2) मैं ..... पुत्री ..... इक़रार करती हूँ कि जायज बातों में अपने पति का आज्ञापालन करूँगी और पति तथा उसके घर वालों के साथ अच्छा व्यवहार करूंगी प्रतिकूल परिस्थतियों में भी पति का साथ निभाती रहूँगी।

(3) मैं ..... पुत्र ..... इकरार कता हूँ कि पत्नी के साथ अच्छे ढंग से जीवन व्यतीत करूंगा और उन तमाम कर्त्तव्यों को पूरा करूंगा जो शरीअत की ओर से मेरे ऊपर अनिवार्य हैं, तथा निम्नलिखित बातों में से कोई बात पाई जाये और दारूल क़ज़ा ..... अथवा दो पंच ..... मुसलमानों की जमाअत ..... बिरादरी/पंचायत ..... कानूनी तौर पर/गैर रस्मी तौर पर जांच पड़ताल के बाद सन्तुष्ट हो जायें और अपने सन्तुष्टि को लिखित रूप में दे दें तो पत्नी को उसी समय या जब तक ऐसी स्थिति रहे कभी भी अपने ऊपर एक तलाक बाइन (अलगाव करने वाला) लागू करके निकाह से अलग हो जाने का अधिकार प्राप्त रहेगा।

(1) पति की लगातार दो वर्ष से कोई सूचना न हो (मफ्क़ूदुल ख़बर)

(2) एक वर्ष से मांगने के बावजूद पत्नी की जीविका अदा न कर रहा हो।

(3) एक वर्ष तक पत्नी की माँग के बावजूद दम्पति (जोड़े) अधिकार की परवाह न कर रहा हो।

(4) पति पागल, मन्द बुद्धि, अथवा संक्रामक लैंगिक रोग से पीड़ित हो अथवा गम्भीर असंक्रामक रोग का शिकार हो।

(5) पति पत्नी के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करता हो जिसमें यह दशाएं भी

सम्मिलित हैं:

(क) पत्नी को निर्दयता से पीटता हो।

(ख) दूसरी महिलाओं से अवैध सम्बन्ध रखता हो।

(ग) पत्नी को अनैतिक कृत्य करने पर विवश करता हो।

4. पति मौजूदा पत्नी के जीवन काल में यदि दूसरे निकाह की आवश्यकता महसूस करे तो दारूल क़ज़ा अथवा स्थानीय जिम्मेदार उलमा, या बिरादरी के जिम्मेदारों के सामने इस बात का स्पष्टीकरण करेगा कि वह दूसरा निकाह क्यों करना चाहता है, और क्या वह दो पत्नियों का खर्च उठाने की सकत रखता है? और वह शरीअत के अनुसार दो पत्नियों के बीच न्याय स्थापित कर सकेगा?

5. यदि पति दूसरा निकाह करे तो वह इस बात के लिए बाध्य होगा कि पहली पत्नी की माँग पर दूसरी पत्नी के लिए अलग आवास की व्यवस्था करे।

6. पहली पत्नी के पेट से पैदा होने वाली सन्तान उससे अलग नहीं की जा सकती, और इस अवस्था के व्यतीत हो जाने के बाद बच्चों की भलाई को ध्यान में रखते हुए क़ाज़ी के माध्यम से उसके पालन पोषण के लिए उचित आदेश दिया जाये।

7. पत्नी की ओर से महर की माफी उसी स्थिति में मान्य होगी जब कि इस बात का भरोसा हो जाए कि यह माफी किसी भी तरह के दबाव, दुल्हन की सादगी, या उसकी शरीअत से अनभिज्ञता के कारण धोखा देकर नहीं कराई गई है।

8. पति तलाक देते समय शरीअत के सिद्धान्तों को ध्यान में रखेगा, किसी भी शरई कारण के बिना, और दारूल क़ज़ा या स्थानीय उलमा से परामर्श के बिना तलाक देने से बचेगा तथा तलाक देना आवश्यक हो जाये तो एक बार में एक से अधिक तलाक नहीं देगा।

9. वह सभी सामान जो विवाह के समय या उसके बाद (निकाह व तलाक के बीच) पत्नी को उसके माता पिता, रिश्तेदारों, पति के परिवार वालों

पति के रिश्तेदारों, पति के दोस्तों आदि की ओर से भेंट उपहार के रूप में प्राप्त हुए हैं पत्नी की मिल्कीयत (सम्पत्ति) मानी जायेंगी।

10. हम दोनों दम्पति इक़रार करते हैं कि अल्लाह न चाहे हम दोनों में यदि कोई टकराव पैदा हो तो दारूल क़ज़ा ..... अथवा ..... (सालिस) होगा, और वह सभी आपसी परिवारिक मतभेद, तलाक़, खुलअ, महर बच्चों की परवरिश, जीविका आदि से सम्बन्धित, सन्तुष्ट होने पर अपने विवेक से फैसला देने का अधिकारी होगा।

पति के हस्ताक्षर: पत्नी के हस्ताक्षर

(1) हस्ताक्षर गवाह (2) हस्ताक्षर गवाह

क़ाज़ी के हस्ताक्षर

☆☆☆